रक्त कमल

लक्ष्मीनारायण लाल

राजकमल प्रकाशन

© १९६२, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

द्वितीय संस्करण, १९६३
तृतीय आवृत्ति, १९६६

RAKTA KAMAL
by
Lakshaminarayan Lal
Price Rs. 2.50 nP.

मूल्य : २ रुपया ५० नये पैसे

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
८ फ़ैज़ बाज़ार, दिल्ली-६
शाखा : साइन्स कालेज के सामने पटना-६
मुद्रक स्काईलार्क प्रिंटर्स, दिल्ली।

युग कवि
सुमित्रानंदन पंत को

“……………………………………………………………………

वस्तु-परिस्थिति के अनुरूप हमें नवयुग के आदर्शों की प्रतिमा निर्मित करनी होगी।”

भूमिका

●

रंगमंच-नवोन्मेष : प्रकृति और दायित्व

स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त देश में जो नयी सांस्कृतिक चेतना जगी है, उसमें रंगमंच-विषयक नवोन्मेष का सत्य परम उल्लेखनीय है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार की ओर से प्रायः प्रतिवर्ष नाट्य-महोत्सव होते हैं। मेले और प्रदर्शनियों में सरकारी-गैरसरकारी स्तरों के नाटक समारोह देखने-सुनने को मिलते हैं। सामान्यतः सारे देश में, मुख्यतः हिन्दी-क्षेत्र में और उसके प्रतिनिधि नगरों—जैसे दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद आदि में बीसियों नाट्य-संस्थाएँ बनती जा रही हैं। सांस्कृतिक समारोहों तथा उद्घाटन के अवसरों से लेकर मंत्रियों तथा अफ़सरों के स्वागत-उपलक्ष्य में और गाँव में विकास-केन्द्र के जलसों तक आज नाट्य-प्रदर्शन की व्यापकता हमें देखने को मिल रही है।

हिन्दी-क्षेत्र में रंगमंच-विषयक इस नवोन्मेष का हम हृदय से स्वागत करते हैं। वास्तव में यह अपूर्व क्षण है, जब हम दीर्घ काल के उपरान्त रंगमंच के प्रति आकर्षित और जागरूक हुए हैं।

लेकिन ध्यान देने की बात है, कि इस नवोन्मेष की प्रकृति और स्थिति क्या है ? यह चेतना पूर्णतः हमारे वास्तविक समाज अथवा जनजीवन से उद्भूत है, अथवा उस पर आरोपित है ? यह प्रेरणा अपने-आपमें है अथवा इसका स्रोत कहीं और है ? इसकी स्थिति क्या है ? इन सब प्रश्नों को हमें बड़ी गम्भीरता से विचारना है। सबसे पहले हमें यह देखना चाहिए कि

---

१. नाट्य-केन्द्र के लिए इलाहाबाद में उद्बुद्ध नागरिकों के समक्ष पढ़ा गया निबन्ध।

इस नवोन्मेष की प्रेरणा-शक्ति क्या रही है ? और उसके फलस्वरूप इसका रूप क्या बना है ?

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद, हमारे देश का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध संसार के अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा बहुत तेजी से आगे बढ़ा है। इस सन्दर्भ में यह भी स्पष्ट है कि हमारा देश राजनीति के स्तर से अधिक सांस्कृतिक स्तर से शेष संसार के सम्पर्क में आया — और विशेषकर ऐसे समुन्नत राष्ट्रों के सम्पर्क में, जो आर्थिक, औद्योगिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में हमसे बहुत-बहुत आगे थे। स्वभावतः हमारा देश बहुत ही उदार भावना, और पूर्ण विश्वास से, मुख्यतः अपनी सांस्कृतिक उपलब्धियों के साथ उन समुन्नत राष्ट्रों के सामने आया। हमारा देश, वास्तव में इसी स्तर से उनके मुकाबले में आ भी सकता था। इसके फलस्वरूप इंग्लैंड, अमरीका, रूस, फ्रांस तथा एशियाई देशों से हमारे सांस्कृतिक आदान-प्रदान प्रारम्भ हुए। बड़े-बड़े सांस्कृतिक शिष्टमंडल —कभी नृत्य के, कभी संगीत, चित्रकला तथा फिल्म आदि के, आने-जाने लगे। हमने बड़े गर्व से विदेशी शिष्टमंडलों को अपनी मूर्ति-कला, स्थापत्य-कला, नृत्य और संगीत-कला के मेले और प्रदर्शनी दिखलाई और इस देश की सांस्कृतिक उपलब्धियों ने उन समुन्नत राष्ट्रों को प्रभावित भी खूब किया।

पर इस सारे प्रसंग में हमें एक बहुत बड़े अभाव का सत्य खटका— विशेषकर राजधानी दिल्ली और हिन्दी-क्षेत्र के नगरों को। यहाँ न कोई जीवित रंगमंच था और न उसकी कोई व्यावहारिक नाट्यकला थी। हमारी अतुल सांस्कृतिक उपलब्धि, विशिष्टता और उसमें रंगमंच-जैसे सत्य का सर्वथा अभाव (जो सारी संस्कृति का दृश्य रूप है, रसरूप है और कसौटी है)। यह विरोधाभास इस व्यापक और जीवन्त क्षेत्र को जैसे झकझोरकर चुनौती दे गया। फिर हम जगे, हममें उत्तेजना और जोश जगा। इधर यह देश अपनी राजनीतिक विशेषताओं तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों के कारण एशियाई जागरण का अग्रदूत होने लगा। फिर हमारा जोश और भी बढ़ा, नवभारत और उसकी राजधानी दिल्ली में रंगमंच नहीं, ऐसा गैर-मुमकिन है। शिष्टमंडल दर्शन करें, हमारे पास रंगमंच है क्यों नहीं। फलतः रंगमंच-विषयक इस नवोन्मेष का उदय सबसे पहले और अति शक्तिशाली रूप में दिल्ली में हुआ, जिसकी मूल प्रेरणा यही थी कि वहाँ आये-दिन बाहर से सांस्कृतिक शिष्टमंडलों का आना-जाना लगा रहता था और उनके सम्मुख रंगमंच-प्रदर्शन नितान्त आवश्यक था, क्योंकि उन समुन्नत राष्ट्रों के सामाजिक जीवन तथा सौन्दर्य-बोध में रंगमंच, मूल, अभिन्न और आवश्यक सत्य है। यह हमारे लिए एक नया अनुभव था। सांस्कृतिक स्तर पर रंगमंच का इतना अधिक मूल्य है, यह हमने शिष्टमंडलों के माध्यम से अनुभव किया और विदेशों में जाकर हमने प्रत्यक्षतः देखा भी।

पर जिन्होंने वस्तुतः हृदय से अनुभव किया और प्रत्यक्षतः देखा, वे तो खड़े सोचते रहे कि रंगमंच का व्यावहारिक कार्य कहाँ से और कैसे प्रारम्भ करें, क्योंकि उसके लिए पहले समाज चाहिए फिर व्यक्ति का आत्मदान चाहिए।

रंगमंच की भूख तथा उसके प्रति आस्था समाज से उद्भूत हो—यह स्थिति चाहिए। स्वातंत्र्योत्तर भारत में निस्सन्देह सामाजिक नवजागरण हुआ। कला और सौन्दर्य-बोध की उचित स्थिति प्राप्त हुई। पर दुर्भाग्यवश किन्हीं स्पष्ट कारणों से हमारे समाज और सम्पूर्ण जीवन में राजनीति इस बुरी तरह व्याप्त हो गई कि लगता है, समाज की वह अति महत्त्वपूर्ण स्थिति, जहाँ वह अपने जीवन का आंतरिक स्तर विकसित करता है, दुर्लभ-सी लग रही है। राजनीति इस तरह उसके चारों ओर है, 'कैरियर' का भाव इस तरह सर्वत्र बिखर रहा है कि वह अपने अन्दर या बाहर तटस्थ एवं भाव-पूरित होकर कुछ निर्माण नहीं करना चाहता, वरन् भोगना-ही-भोगना चाहता है। मनोरंजन के साधनों तथा उसके स्तर और दृष्टिकोण में, यही कारण है कि, उत्तरोत्तर हीनता आती जा रही है। अतएव समाज, जगजीवन, राजनीति की ओर—वास्तविक रंगमंच के विषय में सोचने वाले अनुभवी व्यक्ति केवल सोचने और समझने की ओर—पर कहावत है संसार में कोई जगह खाली नहीं ! एक तीसरा वर्ग रातों-रात पैदा होकर

रंगमंच-विषयक इस शून्यता में अवतीर्ण हो गया और विशुद्ध आर्थिक, राजनीतिक और कैरियरिज़्म के स्तर से रंगमंच-जैसे अति सामाजिक माध्यम को व्यक्तिगत धरातल से अपनाता चला गया।

आज आप देखें, मुख्यत: दिल्ली में, सामान्यत: लखनऊ, इलाहाबाद आदि नगरों में कितनी तरह की एमेच्योर नाट्य-मंडलियाँ और संघ तैयार होते चले जा रहे हैं। चारों ओर से, मुख्यत: सरकारी स्तर से और इससे भी अधिक अफ़सरों की ओर से रंगमंच-निर्माण और उदय की इतनी माँग हो रही है कि आश्चर्य होता है कि यह सहसा हो क्या गया ?

कितना आवेश है, कितनी जल्दी मची है ! 'कैरियर' और सांस्कृतिक फ़ैशन का इतना अतुल आग्रह है कि लोगों को इतनी फ़ुरसत नहीं है कि वे दिल्ली अथवा इलाहाबाद की सामाजिकता से, वहाँ के नागरिकों के बीच से इसकी परम्परा जोड़ें, उसका मंथन करें, और इसे एक आन्दोलन का रूप दें। व्यक्तिगत उद्देश्य और उपलब्धि का ही प्रश्न, ऐसा लगता है, मुख्य है, और बात जैसे समझी ही नहीं जाती; न रंगमंच का स्वभाव, न उसकी मूल प्रकृति, न उसकी गरिमा। बीच ही में ये हवाई रंगमंच इस तरह बन रहे हैं जैसे समाज से इनका कोई सम्बन्ध ही न हो। इन्हें न तद्विषयक शिक्षण की आवश्यकता-अपेक्षा है, न परम्परा-ज्ञान की, और न रंगमंच-विषयक सौन्दर्य-बोध की ही। लगता है, ये अपने-आपमें पूर्ण और सन्तुष्ट हैं। बात यह है कि इन नाट्य-संस्थाओं की प्रकृति ही कुछ इस तरह की है जो रंगमंच के मानदंड से कतई मेल नहीं खाती।

उदाहरण के लिए, पिछले वर्षों में छोटी-बड़ी जितनी नाट्य-संस्थाएँ इस क्षेत्र में बनी हैं, उनकी प्रकृति और अभिप्रायों को ध्यान में रखते हुए उन्हें प्राय: निम्नलिखित वर्गों में बाँटकर देखा जा सकता है—

(क) वह नाट्य-संस्था, जो केवल विदेशी शिष्टमंडलों एव विदेशियों के लिए अपने प्रदर्शन नियोजित करती है।

ध्यान देने की बात यह है कि इस संस्था के नाटक सबके लिए नहीं खुले होते। इसमें जन-रुचि और नाटय-साहित्य के स्तर तथा मर्यादा—जिसे हम भारतीय कहेंगे, उससे कोई साम्य हो—इसकी आवश्यकता नहीं।

(ख) वह नाट्य-संस्था, जो किसी विशेष नाटककार द्वारा संचालित होती है, जिसमें केवल उसी के नाटक खेले जा सकते हैं।

(ग) वह नाट्य-संस्था, जो काग़ज़ों में, दैनिक पत्रों में, राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित है और अपने लक्ष्य में सदा सरकारी अनुदान का पथ जोहती रहती है।

(घ) वह नाट्य-संस्था, जो रेडियो और सूचना विभाग अथवा इससे भी ऊपर कहीं नौकरी पाने या सुपात्रता-ग्रहण के लिए पृष्ठभूमि के रूप में रची जाती है।

(ङ) वह नाट्य-संस्था, जो महज़ फ़ैशनवश यत्र-तत्र नाम छपवाने, शीघ्रातिशीघ्र सामाजिक मर्यादा पाने के लिए खोली जाती है।

(च) वह नाट्य-संस्था जो असफल, निराश, बेकार और अशिक्षित अभिनेताओं द्वारा संचालित होती है।

(छ) वह नाट्य-संस्था, जो बड़े अफसर की पत्नी या सम्बन्धी द्वारा चलायी जाती है, जिसके अपने सरकारी-गैरसरकारी साधन और सुविधाएँ हैं।

इतनी संस्थाएँ और उनसे सम्बन्धित अगणित कलाकार—नाटककार, अभिनेता, सज्जाकार, निर्देशक और शिल्पी।— इसका फल आज यह है कि यहाँ प्राय: हर सातवाँ नवयुवक और आधुनिक शिक्षित लडकी कलाकार है। अभी तक 'रेडियो आर्टिस्ट' विशेषण की धूम थी, अब उससे दुगुने रूप में नाट्य-कलाकारों (ड्रामा आर्टिस्ट) की संख्या बढ़ रही है।

इस सम्बन्ध में, 'इरिक वेण्टले' की एक बात याद आती है–"A decadent age encourages talent, exploits it and ruins it." कलाकारों की इस अपरिमित बाढ़ से क्या होगा ? ऐसे कलाकार जिनमें स्वभावत: अहं और घमंड का विकास मिलता है और जो अपने स्वस्थ पथ से ही हटे दीख पड़ते हैं। अज्ञानता, दर्प, कर्म-ज्ञानरहित इच्छा उन्हें एक-एक करके नष्ट करती रहती है। इस तरह से तो, यह असीम कलाकार-

वर्ग रंगमंच को बदनाम कर देगा कि यह तो युवक-वर्ग को नष्ट करता है। यह बुरी चीज है—लोग फिर कहने लगेंगे।

ऊपर जितने प्रकार की संस्थाओं का उल्लेख है उनसे स्वभावतः इस क्षेत्र में एमेच्योर रंगमंच की प्रकृति और उसके आन्दोलनकारी स्वरूप को क्षति पहुँच रही है। नवोदित कलाकार के पूरे समाज में, इनसे इतने ग़लत मूल्य विकसित हो रहे हैं जो निश्चय ही एमेच्योर रंगमंच की प्रकृति तथा मानदण्ड के पूर्ण विरोध में पड़ते हैं।

लोग अपनी-अपनी संस्थाएँ कन्धों पर रखे हुए, इधर-उधर के छीने-झपटे और स्वयं निर्मित नाटक लिये हुए गली-गली घूमने लगे हैं। कहीं लखनऊ में विकास-प्रदर्शनी हुई, कहीं कानपुर या आगरा में औद्योगिक मेला लगा, कहीं कुचियाताल या मऊग्रामा में कोई मंत्री आये, कहीं इटावा में 'यूथ कांग्रेस' की रैली हुई, निहालपुर में विकास-केन्द्र का जलसा हुआ, फिर क्या पूछना, ये संस्थाएँ विशुद्ध व्यावसायिक स्तर से वहाँ भागती हैं और एमेच्योर रंगमंच के मानदण्ड को ध्वस्त करती हैं, बल्कि उसे खुले आम बेचती हैं।

इन स्थितियों में वास्तविक ढंग और गंभीरता से रंगमंच के लिए काम करने वाले जिम्मेदार व्यक्ति के सामने रंगमंच-विषयक क्या-क्या दुर्दशाएँ हैं, उनके चारों ओर क्या-क्या मनोवृत्तियाँ कार्य कर रही हैं—यह सब रंगमंच आंदोलन और नवोन्मेष की दृष्टि से बेहद चिन्त्य है। ग़लत मूल्यों और मानदंडों से रंगमंच घिरता जा रहा है।

समाज के बड़े भाग्य से नागरिकों के अदम्य उत्साह और मनोयोग से समूची संस्कृति के जीवन विकास से कहीं रंगमंच का उदय होता है। और समाज अपने रंगमंच के प्रति आस्थावान् होता है। वह शुभ और अपूर्व समय आज आया है, पर दुर्भाग्यवश वह काल भी संग-संग आया है, जो रंगमंच-विषयक इस नवोन्मेष को असत् और अशुभ मूल्यों में मरोड़ दे।

दोष हमारा भी है। कहीं हम भी दोषी है। इस नवोन्मेष के भीतर जो कुछ स्वस्थ तत्त्व हैं, यह जो हमें अनोखी स्थिति मिली है उसे हमने गम्भीरता से नहीं ग्रहण किया। इस नवोन्मेष को संस्कार देकर हमने इसे कोई आधार नहीं दिया। इसे व्यवस्थित और उचित रास्ते पर हमने चलाया नहीं। इसका फल यह हुआ कि किसी को वह रास्ता न मिला जो रंगमंच का है। सब उनकी नकली छाया में ही भटक रहे हैं। उन्हें न किसी तरह का बौद्धिक स्तर मिला, न उन्हें हमसे समवेदना या योजना मिली। उन्हें आप किसी तरह नहीं बाँध सकते; बाँध सकते हैं तो केवल ज्ञान और संस्कार देकर बाँध सकते हैं, स्तर और गहराई देकर सुसंस्कृत कर सकते हैं—नहीं तो ये संस्थाएँ, विकास-मेले से लेकर एम०एल०ए० के लड़के की बारात तक में प्रदर्शन करने जाएँगी और अपना बाजार-भाव बनाएँगी। यह इनकी विवशता है और ये करें ही क्या? इनका विकास ही इसी क्रम से है।

आज एमेच्योर रंगमंच के विषय में जो छिछलापन और अज्ञानतावश जो स्तरहीनता फैल रही है, उससे लड़ने और उत्साही नवयुवक-वर्ग को रंगमंच के सही मार्ग पर चलाने के लिए यह परमावश्यक है कि हम इन्हें रंगमंच के सही स्तर पर दीक्षित करें—रुचि और सौन्दर्य-बोध देकर इन्हें ऊपर उठायें। इनके दूषित दृष्टिकोण को नवसंस्कार दें।

विश्व-नाट्य-साहित्य में से जो रंगमंच के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, जिनसे रंगमंच और नाट्य-स्तर स्पष्ट होता है, उन नाटकों के अनुवादों से या मूल से ही पहले 'नाट्यपाठ' (Play Reading) होना प्रारम्भिक अवस्था में बेहद आवश्यक है।

ऊपर रंगमंच-नवोन्मेष के सम्पूर्ण चित्र के प्रायः एक ही पक्ष, एक ही पहलू की चर्चा मैंने की है। इसका दूसरा भी पक्ष या पहलू जीवित है, इसे हमें नहीं भूलना है। इस महत्तर प्रदेश का वह विशाल जनक्षेत्र, विशुद्ध समाज, जो परम्परा से रामलीला, दशहरा, धर्मोत्सव, और नौटंकी, रासलीला में रुचि रख रहा है, यह सब इस नवोन्मेष का वास्तविक क्षेत्र है। कार्य यहाँ से प्रारम्भ करना है। दूसरी ओर इस क्षेत्र का वह बौद्धिक वर्ग जो वर्षों से संसार के नाट्य-साहित्य और रंगमंच का पठन-पाठन, और विदेशों में उसके प्रत्यक्ष ज्ञान का भागी रहा है और जो रंगमंच को सौंदर्य-

बोध की दृष्टि से देखता रहा है—इस वर्ग से नवोन्मेष को वास्तविक रूप से, परन्तु किन्हीं स्तरों तक (नवोन्मेष की दूसरी परिणति बौद्धिक तहखानों में बन्द हो जाना भी एक स्वाभाविक खतरा है।) सम्पृक्त कर देना बहुत आवश्यक है।

इस दिशा में यह हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है कि ऊपर के दोनों विशाल वर्ग रंगमंच-विषयक उक्त नवोन्मेष की विकृतियों से सर्वथा दूर और असंपृक्त हैं।

रंगमंच एक परम्परा है। इसके कुछ मूलगत सत्य हैं, जो कभी परिवर्तित नहीं होते। उनमें परिवर्तन लाने से तात्पर्य है, रंगमंच से अपने को दूर हटा लेना। इस सन्दर्भ में मैं यह नहीं कह सकता कि परिवर्तन लाकर आप रंगमंच को नष्ट कर देंगे। रंगमंच को कौन नष्ट कर सकता है ? यह तो हमारी आदिम प्रवृतियों और स्थायी भावों से सम्बन्धित है। हाँ, हम उस विराट् सौन्दर्य-तत्व से स्वयं अलग अपने-आपको नष्ट कर लेंगे। जब भी कोई समाज की उचित पीढ़ी आएगी, रंगमच अपनी परम्परा के साथ दूने वेग से फूटकर उमड़ आएगा।

मैं कहने जा रहा था, रंगमच के कुछ मूलगत सत्य होते हैं। जैसे, इसका सम्बन्ध और इसका उदय नागरिकों अथवा समाज के बीच से होता है, और होना चाहिए। यह नवोन्मेष उनके जीवन में उतर जाए अथवा स्पर्श कर जाए, भाग्य की बात यह होगी। व्यक्ति शोर मचा सकता है, रंगमंच पर लेख और परिसंवाद कर सकता है, पर इसे छू नहीं सकता—बाँध सकने की तो बात ही नहीं उठती, क्योंकि रंगमंच आदिम परम्परा है, पूरी सामाजिकता की अबाध धारा है। यह किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, पूरे समाज की स्थिति और उपलब्धि है। इसलिए वास्तकि रंगमंच आत्म-दान है, आत्म-प्रतिष्ठा नहीं। समाज अपना यह आत्म-दान जिस स्तर, जिस गहराई और व्यापकता से देता है, रंगमंच उसी के अनुरूप निर्माण लेता है, उद्भव और विकास पाता है। शेक्सपीयर ने तभी कहा है, यह 'प्रकृति का दर्पण' है। इसे युग-समाज अपनी छवि और आकृति देखने के लिए बनाता है।

इस नवोन्मेष को, जिसे अब तक कोई आधार नहीं मिला है, जिसे अब तक किसी माँ की कोख नहीं मिली है, जो दुधमुहाँ है और जन्म के पहले से ही पूतनाओं से घिरा है, इसे हम समाज के अंक में दे दें—इसे हम पहले जीवन से मिला दें, अपनी संस्कृति की विराट् माँ के सुपुर्द कर दें, जहाँ यह स्वभावतः जी सकेगा—इसका पालन-पोषण होगा—अपने जीवन के अनुरूप, परम्परा के अनुरूप। देशी शिशु विदेशी नर्स को क्या करेगा ? शिशु को अपनी माँ चाहिए—वह माँ जो स्वयं समाज है, संस्कृति है।

हिन्दी नाटक और नया नाटक

हिन्दी-नाट्य-साहित्य में भारतेन्दु की धारा का आगे विलुप्त हो जाना हमारे रंगमंच और नाट्य-लेखन की दिशा में एक करुण घटना थी। इसकी जितनी जिम्मेदारी आगे के नाटककार-वर्ग पर थी, उससे कहीं अधिक जिम्मेदार उस युग की सांस्कृतिक चेतना थी, जिसने भारतेन्दु-युग के बाद राजनीति और सुधार-आन्दोलन तथा पुनरुत्थान के नाम पर इस कला-माध्यम को नष्ट किया।

भारतेन्दु का वह काल हिन्दी-नाट्य-लेखन और व्यावहारिक रंगमंच-उत्थान की उषा-बेला थी। उस समय नाट्य-लेखन और रंगमंच-कार्य दोनों एक-दूसरे से अभिन्न कर्म समझे गए थे। साथ ही उस समय नाट्य-लेखन और उसका रंगमंच अपनी संस्कृत नाट्य-परम्परा और उसकी उपलब्धियों से परिपुष्ट था। उसका अपनी भूमि और कला-संस्कार से सीधा लगाव था, जिसका पूर्ण फल हमें आगे देखने को मिलता। तीसरी बात, जो विशेष रूप से इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, वह यह कि भारतेन्दु के नाट्य लेखन में एक अपूर्व विभिन्नता, मुक्ति और विविध नाट्य-शैलियों तथा रंग-पद्धतियों की प्रतिष्ठा है, जिनसे रंगमंच की सहज शक्ति का आभास मिलता है और इसके अपार भविष्य के प्रति मन आस्थावान् होता है। पर इतिहास ने ऐसा नहीं होने दिया।

और इसके बाद हिन्दी-नाट्य-लेखन का जो दूसरा अध्याय खुला, उसकी प्रेरणा और उसमें रंगमंच का स्वरूप—सब-कुछ अनिश्चित, काल्पनिक और असंगत था। अपने एकान्त धर्म—रंगमंच से विमुख हो आगे नाटक सिर्फ अध्ययन-अध्यापन की सामग्री बनकर रह गया।

दूसरी ओर व्यावहारिक रंगमंच पारसी थियेटर के हाथ में चला गया, जहाँ नाटक बिलकुल गौण था, मुख्य था उसका व्यवसाय।

उस समय पारसी थियेटर केवल हिन्दी-क्षेत्र में ही नहीं, वरन् समूचे भारतवर्ष का रंग सत्य था। लगभग एक हजार वर्ष तक मुसलमानी प्रभाव के कारण जो भारतीय जनता मनोरंजन की भूखी थी, वह स्वभावतः इस पारसी रंगमंच के मनोरंजन में टूट पड़ी।

इसका प्रभाव समूचे युग और देश पर पड़ना ही था—क्या दर्शक के स्तर से, क्या अभिनेता, प्रस्तुतकर्त्ता और नाटककार के स्तर से !

हिन्दी-क्षेत्र में इस संदर्भ में एक विचित्र बात घटी। यहाँ भारतेन्दु के बाद अगले पचास वर्षों तक अपना रंगमंच ही विलुप्त रहा। जनता मनोरंजन के लिए दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई की ओर से आनेवाली पारसी कम्पनियों के रंग-अनुष्ठानों को देखती रही। पर इस पचास वर्ष की लम्बी अवधि तक हिन्दी-रंगमंच जैसा कुछ भी नहीं था। एक स्पष्ट, निश्चित मौन, व्यवधान, रंगशून्यता।

किन्तु ठीक इसके विपरीत बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात और दक्षिण में उनका अपना रंगमंच अबाध गति से चल रहा था। उस युग का सबसे बड़ा शक्तिशाली रंग-प्रकार 'पारसी थियेटर' के हाथ में जैसी जनता थी, ठीक उन्हीं के स्तर से, कला-प्रतिमान से उन प्रान्तों में रंगमंच का स्वरूप रहना स्वाभाविक ही था।

किन्तु जब पारसी रंगमंच का युग समाप्त हुआ, उस रंगमंच के स्थान पर जब सिनेमा आया—तब इस क्षेत्र में क्या गति हुई, इसका लेखा-जोखा बड़ा ही मनोरंजक और साथ ही बहुत गहन-गम्भीर भी है। वस्तुतः सिनेमा के सामने पारसी रंगमंच इसलिए खत्म हो गया कि सिनेमा ने यथार्थवाद और स्वाभाविकता के स्तर से एक नये प्रकार के अभिनय और अनुष्ठान-कला को उसके सामने ला खड़ा किया। फलतः पारसी थियेटर के वे नाटक, जो गाना, नाच, जोशीले भाषण, शेरो-शायरी तथा रोमांचपूर्ण घटनाओं तथा कथातत्वों से निर्मित होते थे, सहसा मूल्यहीन हो गए। और सिनेमा के सामने यह समूची नाट्यधारा समाप्त हो गई।

पर ध्यान देने की बात यह है कि इस पारसी रंगमंच के युग में हिन्दी-

क्षेत्र को छोड़कर अन्य उन सब प्रान्तों में, जहाँ उनके रंगमंच अबाध गति से चल रहे थे, उन पर स्वभावतः उसी पारसी रंगमंच के तत्त्वों ने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से कहीं-न-कहीं जड़ जमा ली।

सम्भवतः बंगाल में से पारसी रंगमंच के इन्हीं जड़ जमाये हुए तत्त्वों को खोद फेंकने तथा रंगशाला को शुद्ध-साफ़ करने के लिए टैगोर ने अपनी नाट्य-धारा की नयी गंगा बहाई है, जिसका उत्स विशुद्धतः संस्कृत रंगमंच है और जिसकी कला अनेक अर्थों में प्रयोगवादी है। टैगोर के इस महत् कार्य का मंगल फल बंगाल के नये नाट्य-लेखन में स्पष्ट है। वहाँ तभी इतना आधुनिक रंगमंच ! कला-स्तर से वहाँ 'बहुरूपी' 'लिटिल थियेटर' के वैसे सफल नाट्य-प्रस्तुतीकरण। और तरुनराय-जैसे नए नाटककारों के नाट्य-लेखन में प्रयोग।

किन्तु शेष अन्य प्रान्तों में, जहाँ टैगोर-जैसा रंगकला-शिल्पी नहीं आया, वहाँ स्वभावतः वर्तमान समय में भी उनके नाट्य-लेखन में जैसे वही पारसी रंगमंच झांक रहा है—उसी का प्रभाव, उसी की प्रेरणा और उसी की छाया। सौभाग्य या दुर्भाग्य से समूचे हिन्दी-क्षेत्र में उन पचास वर्षों की लम्बी अवधि में जो रंगमंच की शून्यता आई जिससे रंग-क्षेत्र में इतना बड़ा व्यवधान आया, हमारे लिए यह हानि की बात नहीं सिद्ध हुई। हम कम-से-कम पारसी रंगमंच के उस बासीपन पिछड़ेपन से मुक्त तो रहे।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद समूचे भारतवर्ष में, विशेषकर हिन्दी-क्षेत्र में रंगमंच का जो नवोन्मेष आया, इसमें रंगमंच-निर्माण और नाट्य-लेखन दोनों कार्य एक ही साथ शुरू हुए। यह शुभ संयोग हिन्दी-रंगमंच-क्षेत्र में भारतेन्दु के बाद सम्भवतः पहली बार घटित हुआ।

पचास वर्षों की रंगमंच-शून्यता और उस अवधि में पठन-पाठन के लिए लिखे गए नाट्य-साहित्य के अध्याय को बन्द कर उसके आगे हिन्दी के नये नाटककार के सामने दो गहन स्थितियाँ थीं :

(क) नाटक अपने व्यावहारिक रंगमंच के लिए निर्मित हो।

(ख) नाटक की शैली और रंगशिल्प क्या हो ? क्योंकि नये नाटककार की विरासत के रूप में पचास वर्षों की केवल रंग-शून्यता प्राप्त थी

हिन्दी में नया नाटककार इस तरह पहली बार अपने-आपको प्रथमतः रंगमंच का अभिन्न अंग अनुभव करता है तथा वह रंगमंच-क्षेत्र में ही बैठकर अपने नाटक लिखे—यह भूख पहली बार उसमें जगती है। पर उसके सामने तभी यह प्रश्न उठता है कि उसका रंगमंच है कहाँ ? किधर है ? कैसा है वह ?

इसके लिए हिन्दी का नया नाटककार नाट्य-लेखन के माध्यम से अपने रंगमंच-अन्वेषण में लगता है। और इस अन्वेषण-प्रक्रिया से हिन्दी में नये नाटक का जन्म होता है, जिससे नये नाटक की उदय-बेला शुरू होती है। नया नाटक अर्थात् रंग-नाटक ! नया नाटक अर्थात् स्वस्थ प्रयोग का नाटक ! नया नाटक अर्थात् विभिन्न रंग-शैलियों का नाटक ! क्योंकि इसका उदय रंग-अन्वेषण और रंग-निर्माण की व्यावहारिक प्रक्रिया से शुरू हुआ, जिसके निम्नलिखित प्रकार और रंग-शैलियां उल्लेखनीय हैं।

नया नाटक : अपनी लोक-शैली में 'कुंवरसिंह की टेक', नाटक तोता-मैना'।
नया नाटक : अपनी क्लासिकल रंगशैली में 'कोणार्क', 'अन्धा युग'।
नया नाटक : विशुद्ध प्रयोगवादी रंगशैली में 'मादा कैक्टस' 'नीली झील'।
नया नाटक : भावात्मक (फैण्टसी) काव्य मय-रंगशैली में 'शिल्पी', 'सूखा सरोवर'।
नया नाटक : रंगगठित यथार्थवादी रंगशैली में 'आषाढ़ का एक दिन', 'कैद', 'शारदीया', 'रातरानी'।
नया नाटक : उदात्त प्रहसन की शैली में 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ', 'सुन्दर रस'।
नया नाटक : अयथार्थवादी रंगशैली (Non-realistic presentational style) में 'रक्तकमल'।

इतनी रंगशैलियाँ ! इतने प्रकार के रंग-प्रयोग ! नाट्य-लेखन का इतना अपूर्व उत्साह ! इतनी मौलिकता ! इतनी वेगवती नयी धारा ! जो अपने पचास वर्षों की रंगशून्यता के मरुस्थल को बेधकर जैसे रंगमंच-अन्वेषण तथा निर्माण के नये पर्वत-शिखर से सहसा फूटकर बही हो !

समूचे भारतवर्ष में इसकी सभी प्रान्तीय भाषाओं तथा नाट्य-साहित्य में नाट्य-सृजन का ऐसा शक्तिशाली वेग केवल हिन्दी-क्षेत्र में ही सम्भव हुआ। शेष अन्य प्रान्तों में जहाँ उनकी रंगमंच-धारा अबाध रूप से बहती रही, स्वभावतः उनका नाट्य-लेखन प्रायः एक ही परिपाटी और परम्परा-पालन का सत्य रह गया।

हिन्दी का नया नाटक और उसका नया रंगमंच विभिन्न रंगशैलियों और प्रयोगों का संग्रह है, किसी एक परम्परा का पालन नहीं। और न तो यह किसी पिछड़े, बासी, समाप्त रंगपद्धति का 'हैंग ओवर' ही है। हिन्दी का यह नया नाट्य अपने सही अर्थों में मुक्तिदायक है, जो नाटककार तथा रंगकर्मी को एक विशाल, अपूर्व कर्मक्षेत्र प्रदान करने जा रहा है। इस रंग उल्लास तथा नव-जीवन के पीछे व्यावहारिक रंगमंच की सामर्थ्य है, केवल बौद्धिकता ही नहीं। और यह सामर्थ्य अपने रंग-अन्वेषण तथा रंगमंच-प्रतिष्ठा में हिन्दी अथवा भारतीय रंगमंच की नई पद्धतियाँ निर्धारित कर रही है और साथ-ही-साथ उसी स्तर से उसी रंग-कर्मयोग से नाट्य-लेखन की शैलियाँ भी निर्मित कर रही है।

यह रक्त कमल

●

प्रस्तुत नाटक अपने अयथार्थ समाज, युग तथा इसकी चेतना-भूमि से लिखा गया है। इसके लिए यथार्थवादी रंगमंच हमारी सहायता नहीं कर सकता। उसका क्षेत्र और माध्यम तो बेहद संकीर्ण और सीमित है। फलतः इसकी विशालता तथा गहन व्यंजना के लिए मैंने अयथार्थवादी रंगमंच के रंगतत्त्वों का आधार लिया है। इसमें नाटक के वर्ण्य विषय और चरित्रों के मनोभावों, द्वन्द्व और उनकी आन्तरिक शक्ति की अभिव्यक्ति प्रमुख है, नाटक का यथार्थवादी प्रस्तुतीकरण नहीं। इसलिए 'रक्त कमल' के रंगमंच में देश, घटनास्थल की यथार्थवादी व्यंजना का उतना महत्त्व नहीं है, जितना कि इसकी कथा, चरित्र और इसमें निहित भावों और विचारों का महत्त्व है।

'रक्त कमल' का नायक 'कमल' है—बिलकुल 'मिथ' जैसा चरित्र। सर्वथा आदर्श, जिसकी ऐसी अवतारणा मैंने जान-बूझकर इस नाटक में की है।

इसमें नाटक के भीतर एक उदात्त नाटक घटा है। उस नाटक ने जैसे अपने शरीर के लिए मुझसे नाटक लिखवाया हो। जैसे उस अन्तर्निहित मूल नाटक ने मुझसे कहा हो कि अब मुझे अभिव्यक्ति दो ! अभिव्यक्ति दो मुझे ! मैं देश हूँ···सत्य हूँ और आज के रंगमंच की चुनौती हूँ। मुझे अभिव्यक्ति दोगे तो तुम्हें अनुभव होगा कि नये नाटककार का तुमने धर्म पाया। और यह भी तुम अनुभूति करोगे कि नाटक लिखना कितने पुण्य, पीड़ा और उद्बोधन का कर्म है। तभी तुम्हारा यह लिखना सार्थक होगा। आखिर तुम्हारा युग क्या है ? तुम्हारे चारों ओर क्या है ? इसे पंख और वाणी दो न ! नहीं तो एक सौ वर्ष बाद का पाठक और लेखक तुम्हारे विषय में क्या सोचेगा ? नाटककार ही तो युग के दायित्व के साथ बँधा है। वह औरों की भाँति मुक्त नहीं है, क्योंकि वह मुक्तिदायक है। वह सिर्फ कल्पना नहीं देता, वह तो निर्माण देता है। वह ऐसा प्राण-यंत्र है जिसके द्वारा युग, समाज तथा काल की हृदय-गति की जाँच होती है। वह एक ऐसा मानस-घर है, जिसमें लोग रोना, गाना, जीना और हँसना सीखते हैं। उसकी नाट्यकृति ऐसी पुण्य-भूमि है, जहाँ चारों ओर मुक्ति-ही-मुक्ति है—लोग, युग और समाज, दुखी, सुखी, पराजित और क्रांतिद्रष्टा यहाँ खड़े होकर अपने-आपको प्रकट कर सकते हैं।

—लक्ष्मीनारायण लाल

पात्र

●

कमल
महावीरदास
डॉक्टर देसाई
माँ
अगस्त्य
अमृता
गुरुराम
कन और सारंग

अन्य : दरबान, बिल्लूसिंह, इन्द्रजीत, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि ।

[नाटक का कार्य-व्यापार महावीरदास और डॉक्टर देसाई के घरों के दरवाजों के बीच एक खुले लॉन में होता है—इलाहाबाद शहर के जमुना-पार क्षेत्र नैनी में । समय—१९५९ ईस्वी ।]

पहला अंक

पहला दृश्य

[मंच की दिशा से दायीं ओर डॉक्टर देसाई के बँगले और बायीं ओर महावीरदास की कोठी के दरवाज़े। ये दोनों मंच-क्षेत्र अर्धगोलाकार लकड़ी के प्लेटफ़ार्म से दिखाये गए हैं। बीच में आगे से पीछे तक खुला मैदान—जिसमें आगे से पीछे तक नीचे-ऊँचे उठे-बिखरे हुए प्लेटफ़ार्म लगे हैं।

फ़रवरी के दिन हैं। सन्ध्या के चार बज रहे हैं।

परदा उठने पर मंच सूना दिखाई देता है। पीछे एक जगह अकेला एक दीपक जल रहा है। बायीं ओर के अर्धगोलाकार मंच पर बिलकुल किनारे एक स्टूल पर बन्दूक लिये महावीरदास का दरबान बैठा है। अवस्था चालीस वर्ष, काली पैंट और उसी कपड़े का बन्द गले का कोट पहने हुए। पृष्ठभूमि में खूब दमकता हुआ लोक-संगीत उठ रहा है।]

(भरे हुए लोक-संगीत·के बीच एक पुरुष-स्वर)

गंगा रे जमुनवा की धार नयनवाँ से नीर बही।
फूटल भारतिया को भाग भारत माता रोय रही॥

(संगीत, फिर एक स्त्री-स्वर)

सब मिलि चलौ इक साथ
आजु सखि देखन को !
कउने डगरिया भारत माता

कउने डगरिया सुराज
आजु सखि वेखन को··· ।

[फिर दोनों स्वर मिल जाते हैं और पृष्ठभूमि का संगीत उदात्त हो जाता है। सहसा बायीं ओर अपने दरवाज़े से तेजी में महावीरदास का प्रवेश। अवस्था करीब चालीस वर्ष। नीले रंग के सूट और टाई में। प्रभावशाली व्यक्तित्व।]

महावीर—(आवेश में) ओहो! कौन लोग हैं ये, जो मेरे सिर पर आकर इस तरह चीख रहे हैं!

(सामने बढ़कर मंच के सिरे पर जाकर)

महावीर—बन्द करो अपना यह गाना-बजाना! भाग जाओ यहाँ से।

(संगीत सहसा टूट जाता है।)

महावीर—अरे, यह चिराग़ कैसा! यहाँ यह चिराग़ कौन जला गया है? दरबान, अन्धे और बहरे हो क्या? तुझे सूझता नहीं क्या? यह कैसा चिराग़ है?

दरबान—मालिक, मुझे नहीं मालूम।

महावीर—फिर किसको मालूम?

दरबान—मालिक, मेरी ड्यूटी तो···।

महावीर—केवल स्टूल पर बैठकर ऊँघने की है। यह लॉन मेरे लिए उतना ही कीमती है जितना कि इस कोठी के भीतर का वह आँगन। (रुककर) चलो, अपने जूते से कुचलकर इस चिराग़ को बुझा दो!

[दरबान बढ़ने को होता है कि दायीं ओर से अमृता का प्रवेश। गोटेदार लाल रंग का लहँगा पहने है, सिर पर साधारण दुपट्टा। अवस्था बाईस

ईस वर्ष की। यौवन पूर्ण।]

अमृता—नहीं, मेरे चिराग़ को तुम नहीं बुझा सकते।

महावीर—क्या कहा?

अमृता—बाबू, आज मंगलवार है न, आज ही के दिन इस खेत के लिए मेरे दादा की हत्या हुई थी।

महावीर—ओहो यह बात! तो तुम यहाँ हमेशा से अपने पिता की उस याद में चिराग़ जलाती रही हो?···बोलो··· बताओ न!···या जब से यहाँ मेरा वह छोटा भाई कमल आया है।

(अमृता चुप है।)

महावीर—दरबान, कुचलकर फेंक दो इस चिराग़ को!

(दरबान आगे बढ़ता है।)

अमृता—(चिराग़ के सामने खड़ी होकर) नहीं! यह मेरी ज़मीन है। यह मेरा खेत है। क्या मैं इसमें एक चिराग़ भी नहीं जला सकती?

महावीर—(चिराग़ को अपने जूते की ठोकर से मारता हुआ) जाकर चिराग़ अपने घर जलाओ।

[अमृता देखती रह जाती है। बायीं ओर से सारंग का प्रवेश—अवस्था पैंतीस वर्ष, पतला-छरहरा बदन, नेवी ब्लू रंग के कपड़े का मज़दूरों वाला पायजामा और उसी की कमीज़, सिर पर टोपी।]

सारंग—और जिसके पास घर ही न हो, वह?

महावीर—ओह तुम!

सारंग—जी हाँ सारंग, आदाबअर्ज़!

महावीर—मेरे सिर पर बैठकर अभी तक गाना गा रहे थे,

और अब मुझसे जबान लड़ाने आया है। (अमृता से) जा यहाँ से, खड़ी क्या है बेवकूफों की तरह ?

[दायीं ओर से गुरुराम का प्रवेश। धोती और लम्बा कुरता पहने हुए, बढ़िया मूंछ। माथे पर टीका। हाथ में मोटी छड़ी। अवस्था पैंतालीस वर्ष।]

गुरु—यह इस तरह से थोड़े ही जायेगी ! इसके लिए डंडे की पालकी चाहिए। शूद्र की जात, इन्हें जूते से बात।

सारंग—और तुझे ?

गुरु—तू भी यहीं खड़ा है म्लेच्छ मुसलमान।

अमृता—खबरदार ! वह मेरा भाई है।

गुरु—ओहो ! यह बात है। यह सब कमल बाबू का जादू है ! (व्यंग्य से) चेतना ! चेतना ! जागे नवभारतेर जनता, एक जाती एक प्रान एकता। (क्रोध से) बदमाश कहीं के !

[अमृता हँस पड़ती है। गुरु आवेश में उसकी ओर झपटते हैं, सीढ़ियों से लड़खड़ाकर गिर पड़ते हैं। अमृता हँसती हुई दायीं ओर निकल जाती है। सारंग हँसता हुआ बायीं ओर।]

महावीर—(क्रोध से) बन्द करो यह हँसी, नहीं तो जबान खिंचवा लूंगा।

(गुरु सँभलकर उठते हैं।)

महावीर—महाराज, चोट तो नहीं लगी ?

गुरु—ओहो ! मैंने तो खयाल ही नहीं किया। यह लॉन किसने चौपट कर दिया (पूरे प्लेटफार्म-मंच को साश्चर्य देखते हैं) यह सब क्या तमाशा है, महावीरदासजी ?

महावीर—यह सब कमल की करामात है।

गुरु—आपने रोका नहीं। अभी सवा पाँच बजे यहाँ माननीय इन्द्रजीत साहब एम० एल० ए० के सम्मान और स्वागत में मीटिंग होने को है। कितनी बहादुरी से उन्होंने अपना 'बाई-इलेक्शन' जीता है ! इसे यहाँ से फिंकवा दीजिए न !

महावीर—कमल यहाँ न जाने कैसा नाटक खेलने जा रहा है ! मैंने बहुत कहा, पर वह माना ही नहीं।

गुरु—ओहो ! अब समझा। तो उसी नाटक का रिहर्सल कनू और अमृता के घर चल रहा था !

कमल—और अभी यहाँ बड़ी धूमधाम से गीत-संगीत भी चल रहा था।

गुरु—वह तो कमल बाबू के मनोरंजन हेतु 'फ़ोक म्यूजिक' चल रहा था। वह धोबी की जात कन्हैया, जिसे कमल बाबू कनू के नाम से पुकारते हैं, ढोलक बजाता है। वह मुसलमान का लौंडा सारंग कान में उंगली लगाकर पूर्वी राग में अलापता है। और वह छबीली अमृता सबके बीच में थिरककर नाचती है। बेशर्म कहीं के ! फ़ोक म्यूजिक के नाम पर सब फूंक देंगे।

[दायीं ओर से डॉक्टर देसाई का प्रवेश ! अवस्था पैंतालीस वर्ष। भरा हुआ गौर वर्ण शरीर। सफ़ेद पैंट, सफ़ेद कमीज, टाई लगाये हुए। ऊपर एप्रेन बाँधे हुए।]

डॉक्टर—क्या बात है गुरु महाराज ? स्वागत-समारोह में आज के नये-नये एम० एल० ए० साहब क्या बोलने जा रहे हैं ?

गुरु—आपको तो उनके बोलने की पड़ी है ! यहाँ देखिए, न, क्या-से-क्या हो गया ! लॉन से थियेटर !

[डॉक्टर साहब की हँसी]

महावीर—डॉक्टर साहब, आज आप सुबह से दिखे ही नहीं ?

डॉक्टर—आज एक के बाद एक मरीज आते गए । अभी एक का ऑपरेशन करके आ रहा हूँ—जाँघ में इतना बड़ा फोड़ा था उसके !

गुरु—आपको पता था डॉक्टर साहब, कमल ने जब यह सत्यानाश किया है ?

डॉक्टर—जी हाँ, सुबह-ही-सुबह देखा था यहाँ—सारंग, कनू, अब्दुल, डेविड, अमृता वगैरह यहाँ मंच लगा रहे थे।

महावीर—आपने रोका नहीं उन्हें ? मुझे इत्तला ही करवा देते आप !

डॉक्टर—सोचिए महावीर बाबू, मैं कैसे रोकता कमल बाबू को ! और वे तो सिर्फ़ ड्रामा ही कर रहे हैं—करने दीजिए न ! आपका क्या नुकसान कर लेंगे !

महावीर—मेरा नुकसान, डॉक्टर साहब बस, मुझे याद न दिलाइए । मैं सोचता हूँ गया के बाद यहाँ आकर यह कॉस्मैटिक्स की इण्डस्ट्री खोलना मेरे लिए ठीक नहीं हुआ । यह श्रीदास इण्डस्ट्री…… ।

गुरु—सब ठीक हुआ है महावीर बाबू, हाँ सिर्फ़ इतनी ही गलती हुई है कि कमल को यहाँ नहीं आने देना चाहिए था ।

डॉक्टर—कैसी बात आप भी करते हैं गुरु महाराज ! आखिर कमल बाबू इनके सगे छोटे भाई हैं !

गुरु—हुँ छोटे भाई ! ऐसे छोटे भाई को……।

महावीर—पता नहीं क्या हो गया इस कमल को ! मैंने इसे गया से यहाँ इसीलिए बुला लिया कि वहाँ यह बेहद उदास रहता था । दिन-दिन-भर गाँवों और बस्ती में पागलों की तरह घूमता और रात को घर आकर चुप मौन बैठा रह जाता । पाँच वर्ष यह विदेश में क्या रहा कि इसका सारा दिमाग ही चौपट हो गया !

गुरु—घबराइए नहीं, सब ठीक हो जाएगा । (सहसा) अरे ! ये फिर बाजा बजाने लगे !

[पृष्ठभूमि से कुछ-कुछ लोकपूजा-संगीत जैसा स्वर उठने लगता है।]

डॉक्टर—यह संगीत तो कमल के नाटक का है ।

गुरु—बताइए, इन नीच गाँव वालों, और मजदूरों के साथ और मिशन कॉलेज के ईसाई तथा मुसलमानों को अपने संग लिये हुए कमल बाबू……।

डॉक्टर—पर इसमें बुराई क्या है, मैं यह नहीं समझ पाता !

गुरु—कमाल है, आपको इसमें कुछ बुराई ही नहीं नजर आती !

महावीर—बुराई और नुकसान ! (रुककर) कहाँ एम० ए० करने के बाद पिताजी ने कमल को विदेश भेजा था—'हैवी इण्डस्ट्री' की योजना सीखने, कहाँ यह ……! (रुककर) कमल के इस परिवर्तन ने पिताजी को इतना भयानक 'शॉक' दिया कि उन्होंने अपने प्राण ही त्याग दिए और माँ तब से कमल के लिए पूजा-पाठ कराती घूम रही है कि भगवान् कमल का दिल-दिमाग ठीक कर दे ।

गुरु—हुँ ! दिल और दिमाग! उसका तो भगवान् ही मालिक है । डॉक्टर साहब, मैंने अपने इन्हीं हाथों से किसी को एम०

एल० ए०, किसी को मंत्री, किसी को फ़कीर और किसी को अमीर बनाया, पर मैंने आज तक इस कमल-जैसा आदमी नहीं देखा। इसके मुँह पर तो जैसे आग दमकती है, और इसके विचार तो···राम···राम···राम ! दुनिया समाज-सुधार का काम बाहर करती है, कमल है कि पहले अपना ही घर जलाओ, फिर······।

महावीर—ख़ैर कमल की क्या मजाल ! मैं उसे समझता ही क्या हूँ ! भाई होने के नाते बस चुप रह जाना पड़ता है, नहीं तो···(सहास रुककर) ख़ैर गुरुरामजी, नये एम० एल० ए० साहब का स्वागत-समारोह मेरे ऊपर वाले बड़े कमरे में हो जाएगा। आप जाकर उन्हें इत्तला कर आइए···या संग लेते ही आइए।

डॉक्टर—पर उसी समय तो कमल का यहाँ नाटक भी होगा !

महावीर—नहीं होगा। पहले वह मीटिंग होगी। जाइए, गुरुरामजी···ले आइए अपने नये एम० एल ए० साहब को।

[गुरुराम की दायीं ओर प्रस्थान]

महावीर—डॉक्टर साहब, आप भी कपड़े बदल लीजिए। मीटिंग में बैठना है आपको।

डॉक्टर—मैं वहाँ क्या करूँगा भला ! प्लीज एक्सक्यूज मी !

महावीर—भाई, मुझे ही क्या करना है ! हाँ, हम लोगों को इन्हें खुश रखना पड़ता है और इसमें हमारा जाता ही क्या है !

डॉक्टर—पर पहले वाले एम० एल० ए० जितेन्द्रमोहन, जो अपने इस पद से हटा दिये गए और जिसमें आप ही···।

महावीर—हटाइए, उन बीती बातों की कौन परवाह करता है ! मैं तो सिर्फ़ एक बात जानता हूँ—अपनी इण्डस्ट्री, जिसकी तरक्की के लिए मैं कोई भी दाँव लगा सकता हूँ। इस समाज में आखिर सभी तो अपने-अपने दाँव लगाये बैठे हैं !

[सहसा पृष्ठभूमि से एक स्वर उभरता है।]

चेतना !
जाग जाग चेतना
जो नया, रंग नये रंग नये चेतना !

डॉक्टर—यह कमल की आवाज़ है !

[स्त्री-स्वर में दूसरा गान आने लगता है।]

सब मिलि चलो एक साथ
आजु सखि देखन को !
अरे चमके मंदिरवा में चाँद
महजिदिया में बंसी बाजे
गुरुद्वारे में खड़े वही राम
गिरिजवा में परभू साजे
सब मिलि चलो एक साथ, आजु सखि देखन को।

डॉक्टर—यह अमृता गा रही है !

महावीर—तभी तो मैं कहता हूँ डॉक्टर साहब, कमल को यहाँ लाकर मैंने बहुत बड़ी ग़लती की। क्या हो गया इस कमल को ?···(सहसा गम्भीर होकर) डॉक्टर साहब, यह कमल हमारे खानदान-भर में सबसे अधिक सीधा, सरल और गम्भीर !

बी० ए०, एम० ए० दोनों में फर्स्ट क्लास फर्स्ट ! सारा कुटुम्ब कमल को लेकर स्वप्न देखने लगा कि यह कमल हमारे परिवार को उन्नति के शिखर पर ले जाएगा। पिताजी ने कितने उत्साह से कमल को विदेश भेजा—पांच वर्ष तक यह योरुप, अमेरिका, इंग्लैंड आदि देशों में घूमता, पढ़ता और देखता रहा। फिर यह अपने देश लौटा। मुझे याद है—कलकत्ते के डमडम हवाई अड्डे पर वहाँ के प्रायः सभी उद्योगपतियों के घर के लोग कमल के स्वागत में खड़े थे। कमल हवाई जहाज़ से निकला तो उसे माँ के अलावा और कोई नहीं पहचान सका। बिलकुल बदला हुआ कमल। सब आश्चर्यचकित रह गए। कमल के मुख से सिर्फ़ इतना ही निकला—'विदेश में पाँच वर्षों तक अपने प्रति—अपने देश के प्रति—अपमान भोगकर लौटा हूँ।'

डॉक्टर—जी हाँ, कमल बेहद 'सेंसिटिव' है। और यह भी बात है महावीर बाबू, कमल की आँखों में बेहद प्रकाश है। बड़े भाग्य से ऐसा पुरुष किसी खानदान और समाज में पैदा होता है। (रुककर) अच्छा मैं तब तक कपड़े बदल लूं!

[डॉक्टर देसाई का भीतर प्रस्थान। महावीर भीतर जाने लगते हैं। दायीं ओर से कनू का प्रवेश। अवस्था पैंतालीस वर्ष। सांवला बदन। किसान-जैसा पहनावा।]

महावीर—कौन ?

कनू—जी, मैं हूं कन्हैया।

महावीर—कन्हैया! कमल तुमको कनू कहता है। जानते हो तुम, कनू का क्या मतलब होता है ? सुना है तुम कुछ पढ़े-लिखे भी हो ?

कनू—मैं नहीं जानता कनू का मतलब। बाबू, मैं तो आदमी का ही अर्थ नहीं जानता।

महावीर—हूं, चेतना का अर्थ जानते हो ?

कनू—चेतना का अर्थ ! कमल बाबू हमें बताते हैं—चेतना का मतलब है प्रकाश। जग जाना—स्वार्थ से परमार्थ की ओर और इस तरह पूरे समाज को जगाना।

महावीर—तो तुम लोग महज़ शोर करके समाज को जगाना चाहते हो!

[कनू चुपचाप अपने सिर के अंगोछे से मंच की सीढ़ियाँ झाड़ने लगता है।]

महावीर—स्वार्थ से परमार्थ की ओर ! समाज-निर्माण। इसके लिए बहुत बड़ा हौसला और कर्म चाहिए।

कनू—वह बड़ा हौसला और कर्म के सारे साधन तो आप ही लोगों के पास हैं। अगर यही आप लोग कर देते तो क्या था !

महावीर—मैं तो वह कर ही रहा हूं। इलाहाबाद के जमुना-पार नैनी के इस पिछड़े इलाकों में इतनी बड़ी कास्मैटिक्स की इण्डस्ट्री—जिसका नाम श्रीदास इण्डस्ट्री है; इसे खोलकर मैंने यहाँ सैकड़ों बेकार आदमियों को नौकरी दी। अपने महान् समाज-सेवी पिता, श्री दीनबन्धुदास की पुण्य-स्मृति में यहाँ मैंने एक कॉलेज खोला। क्या यह समाज और देश-सेवा नहीं है ? जवाब दो मुझे।

कनू—मुझसे बाबू आप इस तरह क्यों जवाब मांग रहे हैं ?

महावीर—अपना यहीं घर बनवाने के लिए तुम्हारे पिता को दो बीघे जमीन के लिए मैं चार हज़ार रुपये दे रहा था। पर

वह तुम्हारी ही वजह से नहीं तैयार हो रहे थे। यों मैंने आखिरकार उन्हें तैयार कर ही लिया।

कनू—खैर, वह तो पुरानी बात हुई। आपको ये दोनों खेत मिल गए। आपकी कोठी बन गई…।

महावीर—पर अब तक तुमने अपनी इस ज़मीन का मुझसे दाम क्यों नहीं लिया?

कनू—मैं अपनी इस ज़मीन का दाम नहीं लूंगा।

महावीर—आखिर क्यों?

कनू—इस ज़मीन के लिए मेरे पिता को हत्या हुई है।

महावीर—झूठ है यह।

कनू—खैर…।

(जाने लगता है।)

महावीर—रुको, तुम्हारी इस दो बीघे ज़मीन का चार हज़ार रुपया मेरे जनरल मैनेजर के पास जमा है। जाओ उसे ले लो। मैं पांच सौ रुपये तुम्हें और इनाम दे दूंगा।

कनू—इनाम! अपनी बुज़दिली और हार का इनाम! पिता की हत्या के बाद मैं दुःख और भय के मारे अपनी इस ज़मीन के मुकदमे की पैरवी न कर सका—इसी का इनाम!

महावीर—अच्छा इनाम न सही, दाम ही सही। कल ऑफ़िस में आकर अपने साढ़े चार हज़ार रुपये ले लेना।

कनू—नहीं।

महावीर—अच्छा पांच हज़ार ले जाना।

कनू—नहीं, नहीं।

महावीर—अच्छा छः हज़ार… सात हज़ार… आठ हज़ार…

कनू—नहीं, नहीं, नहीं।

(जाने लगता है।)

महावीर—अच्छा तो सुनो! तेरी बहन अमृता आज यहाँ अपने पिता की स्मृति में एक चिराग़ जला गई थी, खबरदार! आइन्दा अगर मैंने देखा तो हाथ काट लूंगा उसके।

[उसी क्षण दायीं ओर से सारंग और अमृता के साथ कमल का प्रवेश। गौर वर्ण, अवस्था पेंतीस वर्ष से अधिक नहीं। खाकी पेंट पर सिर्फ़ जवाहर बंडी पहने हुए। पैरों में चप्पल। अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व।]

कमल—ये हाथ मिट्टी के नहीं हैं कि कोई इन्हें काट ले जाए। ये हाथ दिशाएँ हैं दिशाएँ।

महावीर—ऐसी दिशाएँ जिनमें सिर्फ़ झूठ और फरेब है, जिनमें सिर्फ़ गन्दगी और बेईमानी है।

कमल—ये विशेषताएँ देखने वाले की आँख की हैं। दिशाएँ सदा निर्मल होती हैं।

महावीर—बन्द करो यह अपना उपदेश।

कमल—जो अपने चारों ओर सिर्फ झूठ, फरेब, गन्दगी और बेईमानी देखता है, पता नहीं वह अपने-आपको क्या और कैसे देखता होगा!

महावीर—आई नो माईसेल्फ़!

कमल—यही तो बात है, आप अपने को नहीं जानते। आप समझते हैं आप एक हैं, और समाज दूसरा है। आप समझते हैं कि जो कुछ बुरा है वह समाज है और जितना अच्छा है वह आप हैं।

महावीर—तो?

कमल—आप, मैं और ये सब अलग-अलग नहीं, एक ही समाज हैं। हमीं देश हैं, राष्ट्र हैं। और यह सच है कि हम सब गरीब हैं, मूल्यहीन हैं, अपाहिज हैं। पर हममें प्राण है, हमारे भीतर कहीं वह अदृश्य स्थान ज़रूर है जो हमसे रह-रहकर प्रश्न करता है। और हम अपने-आपसे ही अपमानित होकर रह जाते हैं। क्योंकि हम शुभ और सुन्दर को उत्तर नहीं देते क्योंकि उसमें फ़िलहाल कोई लाभ नहीं दिखता, इसलिए हम उत्तर देते हैं सिर्फ़ अशुभ को··· असुन्दर को।

महावीर—कमल, चुप रहो! जानते हो तुम ये बातें किससे कह रहे हो?

कमल—अपने-आपसे अपने-आपको कह रहा हूँ। (रुककर) जिस देश के सिर्फ़ पाइण्ट फ़ोर प्रतिशत आदमी धनी हों, शेष सब गरीब हों, जिस समाज के दो प्रतिशत आदमी सुख और विलास के स्वर्ग में रहने वाले हों, शेष नंगे और भूखे हों, जहाँ सिर्फ़ ग्यारह प्रतिशत आदमी पढ़े-लिखे हों, शेष गँवार, अन्धविश्वासी और अचेतन हों—यह सब हमारे मनुष्यत्व का कलंक नहीं है तो क्या है?

महावीर—पता नहीं; मेरे पास तुम्हारी बकवास सुनने का समय नहीं है।

कमल—यही तो बात है—आदमी अपने घोर सत्य का मुकाबला नहीं कर पाता। वह अपने से भागकर किसी असत्य में शरण लेता है। लीडर देश की जनता को मूर्ख बनाकर हमारा नेता बनता है। उद्योगपति समाज का शोषण कर राष्ट्रसेवी-धर्मसेवी का चेहरा बाँधता है और शेष सब उसे उदास देखते रह जाते हैं—साहित्यकार, विचारक, अध्यापक, पत्रकार, और वकील। चारों ओर घनघोर असत्य के प्रति कोई विरोध नहीं। कहीं विद्रोह नहीं, जैसे युगों की हमारी गरीबी, फूट और पराजय ने हमारे भीतर के प्रकाश को ही बाँध लिया हो। (रुककर) साल-दो साल बाद देश में कहीं विद्रोह भी होता है तो वह इंसानियत के सबसे निचले और घटिया स्तर पर—हिन्दू-मुस्लिम दंगा, भाषा का विद्रोह, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त पर घात। सिनेमाघरों में टिकट के लिए इन्कलाब, राष्ट्रीय संस्थाओं में स्ट्राइक!

महावीर—तो इस तरह तुम अपने शान्त देश में विद्रोह और अशान्ति फैलाना चाहते हो? आज देश जब स्वतंत्र होकर अपने नव-निर्माण में लगा हुआ है, तब तुम उसमें बाधा डालना चाहते हो?

कमल—नव-निर्माण किसका?

महावीर—देश का।

कमल—देश क्या है?

महावीर—यही अपना समूचा भारतवर्ष—काश्मीर से कन्याकुमारी तक, असम-बंगाल से महाराष्ट्र तक।

कमल—यह देश नहीं, यह देश का केवल भूगोल है। अपना देश क्या है?

महावीर—देश माने भारतवर्ष!

कमल—भारतवर्ष देश नहीं, भारतवर्ष तो एक इतिहास है। देश क्या है?

महावीर—(चुप है।)

कमल—देश है, हम-तुम, ये सब लोग। यहाँ की तैंतालीस

करोड़ अस्सी लाख जनता—उसकी भूख, गरीबी, गन्दगी, उदासी और उसका घोर असन्तोष। जिसके रक्त में इतिहास ईश्वर की मरज़ी का, भाग्य का, जाति और फूट का कीड़ा डाल गया है।

महावीर—(उपेक्षा से) फुलिश एंड चाइल्डिश !

[तेज़ी से भीतर प्रस्थान]

कमल—(निर्देश देता हुआ) देखो, नाटक में मैं बनूँगा देश यहाँ खड़ा रहूँगा। सारंग, तुम यहाँ बैठोगे, तुम नाटक में बेवकूफ़ का पार्ट करोगे। कनू, तुम यात्री बनोगे, जो रास्ता भूल गया है। तुम इधर से आओगे और अमृता तुम……तुम उस माँ का पार्ट करोगी जिसका शिशु कहीं खो गया है। जाओ वक्त हो गया। तैयार हो जाओ झट !

[कनू, सारंग और अमृता का प्रस्थान]

कमल—(अकेला) पर इस नाटक को देखेगा कौन ?

[उसी क्षण भीतर से कमल की माँ का प्रवेश। अवस्था पचास वर्ष के लगभग। श्वेतवसना, हाथों में सोने की चूड़ियाँ। कन्धे पर शाल पड़ा हुआ।]

कमल—माँ !

माँ—तुम कहाँ थे कमल ? आज़ सुबह ही से मैं तुम्हें ढूंढ़ रही हूँ। तुमने आज कुछ खाया-पिया भी नहीं।

कमल—भोजन कर लिया है, माँ !

माँ—कहाँ ?

कमल—अमृता के घर !

माँ—छी-छी-छी अमृता के घर ! उस धोबी के यहाँ ! हाय, तुझे क्या हो गया है ?

कमल—माँ, मैं आज यहाँ एक नाटक खेलने जा रहा हूँ, तुम उसे जरूर देखना, हाँ !

माँ—मैं जानती हूँ तू यहाँ क्या नाटक खेलेगा ! कमल, याद रखना, अगर तुम सुधरे नहीं तो जिस चोट से तुम्हारे पिता का स्वर्गवास हुआ, उसी से मैं भी मर जाऊँगी।

[रो पड़ती है।]

कमल—माँ, ऐसे न कहो, तुमने तो मुझे जन्म दिया है। तुम तो मेरे दर्द को समझो। विश्वास करो माँ, यदि तुम मेरे साथ उन पाँच वर्षों तक विदेश में रही होती तो समझती कि वहाँ मुझे कितना अपमान और दुःख सहना पड़ा। मैं विदेश में गरीब पिछड़े देश हिन्दुस्तान का महज़ एक काला आदमी था। जगह-जगह मेरा अपमान ! मेरे देश का अपमान ! कोई कहता था—हिन्दुस्तान जादू, मंत्र, ज्योतिष और साँपों का देश है। कोई कहता था—हिन्दुस्तान ताश का पत्ता है, जिसे एक ओर से रूस फेंकता है तो दूसरी ओर से अमेरिका। कोई कहता था—हिन्दुस्तान एक मुल्क है ही नहीं, अंग्रेज़ों ने उसे इस तरह प्रान्तों, भाषाओं और शिक्षा तथा नौकरशाही के चौखटे में बाँटा है कि वे शान्ति से पूरे देश को संभाल ही नहीं सकते। मैं तुझे कहाँ तक बताऊँ माँ, पश्चिम देश के हम पर दया करते हैं और हम पर बेतरह हँसते हैं।

माँ—हे ईश्वर, मेरे कमल को यह क्या हो गया ? इसी दिन के लिए मैंने तुम्हारी इतनो पूजा की थी। एक मन्दिर कलकत्ते में बनवाया, एक ठाकुरद्वारा गया में, एक शिवालय भागलपुर में और एक हनुमान मन्दिर यहाँ जमुना-तट पर।

कमल—तू अपने भगवान् से मेरे लिए क्या चाहती थी

माँ ?

माँ—अपने योग्य पिता का योग्यतर बेटा ।

कमल—यानी लखपती बाप का करोड़पती बेटा !

माँ—(चुप है ।)

कमल—किस लिए माँ ?

माँ—अपने खानदान के लिए, अपनी इज्ज़त के लिए !

कमल—माँ, बैठो तुम ! यहाँ बैठ जाओ ! मैं समझाता हूँ तुम्हें !

[सामने के अर्धगोलाकार मंच पर बिठा देता है । स्वयं खड़ा रहता है ।]

कमल—माँ, तुमने अपना यह देश नहीं देखा । अपनी गरीबी में बिलकुल सोया हुआ है हमारा पूरा समाज । विदेश से लौटकर मैं जो चार वर्ष तक पूरे हिन्दुस्तान-भर में घूमता रहा, मैंने देखा इस देश की माँग रोटी है, जिसके लिए पहले देश के बिखरे हुए मन की एकता आवश्यक है ।

[सूट पहने डॉ० देसाई का प्रवेश ।]

डॉक्टर—यही बात तुमने शायद यहाँ के बड़े पादरी से की थी कि तुम लोग गरीब भारत की भूमि पर क्यों इस तरह गिरजे-पर-गिरजे बनवाते जा रहे हो ?

कमल—जी हाँ, जो जाति भूखी है, उसके हाथ में दर्शन और धर्मग्रन्थ रखना उसका मज़ाक उड़ाना है ।

डॉक्टर—पर इस सवाल पर मिशन के बड़े पादरी तुमसे नाराज़ हो गए ।

कमल—इस देश को अलग-अलग टुकड़ों में बाँटने की जितनी ज़िम्मेदारी यहाँ के धर्मों की है, उतनी ज़िम्मेदारी यहाँ के

इतिहास की नहीं ।

डॉक्टर—मेरा भी यही विश्वास है ।

माँ—पर सबका दुःख तुम क्यों अपने सिर पर लेते हो, बेटा?

कमल—क्योंकि माँ, सबके सुख में ही हमारा सुख है । एक का ही सुख, एक की ही अमीरी मनुष्य-जाति का अपमान है ।

माँ—तुमने किस परिवार में जन्म पाया है कमल, इसे तू भूल जाता है ।

कमल—ईश्वर ने हम सबका केवल मनुष्य बनाया । किन्तु मनुष्य ने यहाँ अपने-आपको कहीं दुखीराम, कहीं सुखीराम कर लिया । अनेक जाति, अनेक धर्म । इस तरह मनुष्य अपने-आपसे ही दूर हो गया—अपने-आपमें ही बँट गया । जिसका दाँव लगा, वह सदा के लिए अमीर, जो दाँव हार गया वह सदा के लिए गरीब ! लेकिन माँ, बाहरवालों के लिए ये दोनों गरीब थे । क्योंकि ये बहुत दूर-दूर बँटे थे, इसलिए बाहरी लोगों ने आ-आकर इन्हें खूब लूटा, और तरह-तरह से लूटा—हूण, शक, मंगोल, तुर्क, पठान, अरब, पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज़ ।

[सहसा दरबान बढ़ता है ।]

दरबान—माँजी, अन्दर चलिए, मालिक बुला रहे हैं ।

डॉक्टर—क्या मीटिंग होने जा रही है ।

दरबान—हाँ साहब !

माँ—(उठती हुई) कमल, मैं तेरे लिए हनुमान स्वामी की पूजा करा रही हूँ ।

कमल—मेरे लिए मन्दिर में पूजा !

[उसी क्षण भीतर से महावीर का प्रवेश ।]

महावीर—माँ, तुम भी किस नास्तिक से मन्दिर और पूजा-पाठ की बातें कर रही हो ! इसे देव-मूर्तियों से क्या सरोकार ?

कमल—युग-युग से तो यह देश पूजा-पाठ करता आ रहा है, ऋषि-मुनियों के धार्मिक उपदेश सुन रहा है, लेकिन इससे मनुष्य के जीवन में कहीं से प्रकाश तो नहीं आया। उसी दीनता, फूट, गरीबी, गुलामी और मन के घोर अन्धकार में ही तो मनुष्य डूबा है।

महावीर—तुम्हारा दिमाग़ खराब है, तभी तुम सारी बातें इस तरह उलटी सोचते हो। हिन्दू धर्म और इसकी देव-मूर्तियों की महिमा तुम्हारी बुद्धि में नहीं आ सकती।

कमल—तुम्हारी देव-मूर्तियाँ, जिन्हें यह ग़रीब पिछड़ा देश नर्क के भय से पकड़े हुए है।

माँ—चुप रह कमल !

[कमल दायीं ओर जाने लगता है।]

माँ—तू अपने घर चल न ! कहाँ जा रहा है ?

[कमल चुपचाप दायीं ओर चला जाता है। महावीर और माँ का अन्दर प्रस्थान।]

महावीर—(अन्दर जाते-जाते) डॉक्टर साहब, आइए न ! इन्द्रजीत बाबू अन्दर आ गए हैं।

डॉक्टर—आ गए हैं। नये एम० एल० ए० साहब !

[सबका बायीं ओर प्रस्थान। क्षण-भर बाद दायीं ओर से गुरुराम का प्रवेश।]

गुरुराम—सब लोग गये न !

दरबान—जी हाँ, सब अन्दर गये।

गुरुराम—देखना दरबान, जब तक हमारी मीटिंग चलती रहे, यहाँ कमल बाबू का नाटक नहीं होना चाहिए।

दरबान—मैं उन्हें कैसे रोकूँगा ?

गुरुराम—(सक्रोध) बदतमीज़ कहीं का ! मुझसे सवाल-जवाब करता है ? तू मुझे जानता नहीं। मैं वही गुरुराम हूँ जिसने तुमसे पहले वाले दरबान को जूतों से पिटवाकर यहाँ से निकाल दिया।

दरबान—और अब वह डाकू हो गया।

गुरुराम—(आवेश में) चुप रहता है कि नहीं !

[तेजी से परदा गिरता है। पृष्ठभूमि का लोक-संगीत सहसा उभरकर छा जाता है।]

दूसरा दृश्य

[कुछ ही देर बाद फिर वही परदा उठता है। मंच का प्रकाश बदला हुआ—केवल बीच में तेज प्रकाश है, पीछे दाएँ-बाएँ कम है। मंच सूना है। सहसा कमल को पुकारती हुई माँ प्रविष्ट होती है।]

माँ—कमल—कमल ! कहाँ है तू ?

[सामने से अमृता दौड़ी आती है। इस समय वह नाटक की भूमिका के वस्त्रों में है। साड़ी-ब्लाउज पहने। केश खुले हुए।]

अमृता—माताजी, कमल बाबू यहीं हैं। यहाँ नाटक होने जा रहा है।

माँ—कौन है तू ?

अमृता—मैं अमृता हूँ, माँ !

माँ—दूर हट जा तू मेरे सामने से ! खबरदार, जो तूने मुझे

छुआ ! तेरी यह हिम्मत ?

अमृता—माताजी ?

माँ—बता मेरा कमल कहाँ है ?

[पीछे से सारंग दौड़ा आता है। वह भी अपनी बेवक़ूफ़ की भूमिका में है।]

सारंग—माताजी, आप कृपा कर बैठ जाइए। कमल बाबू इधर हैं। 'मेक-अप' हो रहा है उनका !

माँ—तू कौन है ?

सारंग—मैं सारंग हूँ, माँ ! इस नाटक में बेवक़ूफ़ का पार्ट कर रहा हूँ।

माँ—और मेरा कमल ?

अमृता—पुरुष-देवता का !

माँ—तू चुप रह ! मैं तुझसे नहीं पूछ रही हूँ।

सारंग—कमल बाबू पुरुष-देवता का पार्ट कर रहे हैं।

माँ—पुरुष-देवता ! तुम सब लोग झूठे हो। तुम्हीं लोगों ने मेरे कमल को बहका रखा है। सच-सच बता, कहाँ है मेरा कमल ? सुना है तुम लोगों ने उसे गन्दे-फटे कपड़े पहनाए हैं। उसके शरीर में घाव किये हैं।

सारंग—वह तो नाटक है माँ ! आप घबड़ाइए नहीं।

माँ—तुम लोग मुझे उसके पास जाने क्यों नहीं देते ? हट जाओ तुम लोग मेरे सामने से।

[माँ सामने बढ़ जाती है। अमृता और सारंग 'माताजी, माताजी' पुकारते रह जाते हैं।]

अमृता—अब क्या होगा ?

सारंग—वही जो होना होगा।

अमृता—मुझे भेजा था माताजी को रोकने। बेवक़ूफ़…।

(प्रस्थान)

सारंग—देखो-देखो, मैं बेवक़ूफ़ का पार्ट कर रहा हूँ, पर मैं बेवक़ूफ़ नहीं हूँ, हाँ !

[सहसा दायीं ओर से कमल की आवाज़ आती है।]

आवाज़—माँ ! माँ ! ओह !

अमृता—(तेज़ी से आकर) दौड़ो-दौड़ो सारंग ! माताजी कमल बाबू को देखकर बेहोश हो गईं।

सारंग—अरे बाप रे बाप !

[दायीं ओर भागता है।]

अमृता—दरबान !…दरबान !

दरबान—क्या है ?

अमृता—(धीरे से) डॉक्टर देसाई को भेजो। माताजी बेहोश हो गई हैं।

[दरबान भीतर दौड़ता है। क्षण-भर बाद डॉ० देसाई का प्रवेश।]

अमृता—आप कमरे में चलिए। माताजी अन्दर पहुँचा दी गई हैं।

[डॉक्टर का प्रस्थान]

अमृता—(पुकारती है) सारंग, सारंग !

सारंग—(आकर) चुप, चुप ! अब नाटक शुरू होने जा रहा है। बस, कमल बाबू नाटक शुरू करने जा रहे हैं। जाओ, अपने प्रवेश पर खड़ी हो जाओ।

[अमृता पीछे बायीं ओर चली जाती है। सारंग खड़ा है, तभी कमल

की आवाज उठती है ।]

कमल—माँ, तुम तो मुझे ही देखकर बेहोश हो गई ! काश तुमने सच्चा भारतवर्ष देखा होता ! ठीक तुम्हारी ही तरह शक्तिहीन, भावुक और दृष्टिहीन ! (रुककर) यह देश ! भारत देश···एकताहीन इसका मन ! जिस पर बाह्य आक्रमणों के असंख्य घाव ! फिर गुलामी···गुलामी···! और फिर मिली हमें स्वतन्त्रता ! किन्तु यह देश ? इसका मन ?

'टूटे-फूटे', दीमक के खाये खानों का,
धूल-भरे गन्दे कागज-पत्रों में लिपटा,
कटे-छँटे अखबारों के पन्नों-सा बिखरा,
बड़े-बड़े खानों, भारी-भरकम पोथों से,
भरा ठसाठस युग का मन है, रीढ़ झुकाए ।'
अस्तव्यस्त
कूड़ा कचरा !

[मंच का प्रकाश बुझने लगता है, तभी भीतर से दौड़े हुए गुरुराम का प्रवेश ।]

गुरुराम—खबरदार ! अभी यहाँ तुम लोग अपना नाटक नहीं खेल सकते । हमारी मीटिंग में अब महाशय इन्द्रजीतजी अपना भाषण देने जा रहे हैं ।

[भाषण शुरू होने लगता है ।]

गुरुराम—सुनो-सुनो ! भाषण शुरू भी हो गया ।

[सुनने लगता है ।]

भाषण—भाइयो, आज हमारी सरहदों पर चीन द्वारा पैदा की गई कठिनाइयाँ, और इधर देश में आये-दिन साम्प्रदायिक

दंगे, आपसी फूट और प्रान्तीयता की गन्दी भावनाओं के कारण देश के सामने यह स्पष्ट है कि किसी भी राष्ट्र की सैनिक शक्ति उस देश के आर्थिक विकास पर निर्भर करती है और आर्थिक विकास उस देश की आन्तरिक एकता पर मुनहसर है ।

गुरुराम—(प्रसन्न) वाह-वाह ! तालियाँ···तालियाँ !

[तालियाँ पीटते हुए बायीं ओर प्रस्थान । मंच का सारा प्रकाश सहसा बुझ जाता है । किन्तु उस अन्धकार में वह भाषण सुनाई पड़ता रहता है ।]

भाषण—देश के आर्थिक विकास और इस महादेश की बाहरी ताकतों से रक्षा—इन दोनों बड़े कामों के लिए देश की आन्तरिक एकता अत्यन्त आवश्यक है । आज हिन्दुस्तान की सरकार जिस राष्ट्र-निर्माण के कार्य में लगी हुई है, उसे हम एक महान् साहसिक कार्य कह सकते हैं ।

[धीरे-धीरे मंच पर प्रकाश लौटता है । मंच के बीचों-बीच एक पुरुष निर्जीव-सा खड़ा है—फटे-गन्दे वस्त्रों में । सिर दायीं ओर झुका है । शरीर-भर में जगह-जगह घाव हैं, फिर भी उसके हाथ-पैर जंजीर से बँधे हैं । सबसे पीछे मंच पर एक बेवकूफ़ बैठा गा रहा है ।]

बेवकूफ़—पक बम बम बम ।
पक बम बम बम ॥
काटे कोई जंजीर पहले देवता की हाँ,
पक बम पक बम ।
पक बम बम बम ॥

[पीछे से एक राहगीर आता है और दृश्य को देखता रह जाता है ।]

राहगीर—हे भाई, सुनो ! अरे सुनो तो मेहरबान !

बेवक़ूफ़—मेहरबान नहीं, मेरा नाम बेवकूफ़ है बेवकूफ़ !

पक बम बम बम ।
पक बम बम बम ।।

राहगीर—भाई, मैं राहगीर हूँ । मुझे मेरा रास्ता बता दो ।

बेवक़ूफ़—अजी, मुझे रास्ता पता होता तो मैं यहाँ बैठा गाता ? अरे जाओ उधर पूछो···वे दायें-बायें दो दरवाज़े हैं ।

[राहगीर दायीं ओर जाता है ।]

राहगीर—भाई, मुझे रास्ता चाहिए। मुझे रास्ता बता दो भाई ! (रुककर) अरे, यहाँ तो दरवाज़ा बन्द है !

[राहगीर बेवकूफ़ की ओर निहारता है । बेवकूफ़ हँस रहा है ।]

बेवक़ूफ़—दूसरे दरवाज़े पर पुकारो न !

[राहगीर दूसरी ओर जाता है और उसी तरह पुकारता है ।]

राहगीर—यह भी बन्द है।

बेवक़ूफ़—(गाता है।)

यह किवाड़ बन्द है
वह किवाड़ बन्द है
सब किवाड़ बन्द हैं
जानते हो क्यों ?

राहगीर—नहीं !

बेवक़ूफ़—(हँसता है) वह देखो, बीच में कौन खड़ा है !

[राहगीर उसे देखते ही डर के मारे लड़खड़ाकर मंच की सीढ़ियों पर गिर पड़ता है ।]

बेवक़ूफ़—(तेज़ी से हँसता है) उठो-उठो! फिर से उठो, गिर गए कोई बात नहीं ।

राहगीर—(सभय) यह कौन है ? क्या है यह ?

बेवक़ूफ़—यह अपना देवता है देवता ! सुनो···लोग बताते हैं कि बहुत दिन पहले हम आपस में ही लड़ रहे थे, कहीं जातियों में बँटकर तो कहीं धर्मों में बिखरकर । भाई-भाई में लड़ाई, वंश-वंश में युद्ध। कहीं उत्तर, कहीं दक्षिण, कहीं पूरब तो कहीं पश्चिम । सुनो···उसी समय न जाने कौन-कौनसे लोग बाहर से आये । इस देवता को बेतरह मारा और इस बेचारे के हाथ-पाँव वे लोग जंजीर से बाँध गए । और अब कोई इस बेचारे की हथकड़ी-बेड़ी ही नहीं काट पा रहा है (हँसता है)। देखते नहीं,तभी चारों ओर इतना सन्नाटा है । सबमें डर समा गया है, हाँ ! तब से घरों में ताले लगे-के-लगे हैं, पर धन गायब है । फसलें खड़ी हैं, पर अन्न पइया है । आदमी में बल है, पर सब कायर हो गए हैं ।

राहगीर—कौन हो तुम ?

बेवक़ूफ़—मैं बेवकूफ़ हूँ (हँसता है)। तुम्हारी तरह एक दिन मैं भी अपना रास्ता पूछने के लिए इधर आया था । और मुझे देख पड़ा यही देवता । मैं भी तुम्हारी तरह इसे देखकर डर गया, पर तब तक इसने मुझे बुला लिया ।

राहगीर—तब यह बोलता था ?

बेवक़ूफ़—हाँ, मुझसे तो यह बोला था ।

राहगीर—क्या ?

बेवक़ूफ़—मुझसे पूछा इसने, तुझे रास्ता चाहिए ? मैंने कहा, हाँ महाराज ! मुझे मेरा रास्ता नहीं मिलता । तब इसने

कहा, पहले मेरी हथकड़ी-बेड़ी काट दो, फिर तुम्हारे लिए अपने-आप रास्ता खुल जाएगा। मैंने बहुत कोशिश की, पर कहाँ इतनी मजबूत जंज़ीर और कहाँ मैं !

राहगीर—फिर ?

बेवक़ूफ़—तब इसने कहा—जाओ, तुम्हें अब रास्ता नहीं मिलेगा। सारे रास्ते मुझमें बन्द हैं। हाँ···तब से मैं यहीं हूँ। पहले मेरा नाम राहगीर था, अब मेरा नाम बेवक़ूफ़ है।

राहगीर—यहाँ क्या करते हो तुम ?

बेवक़ूफ़—तब से यहीं बैठे इन्तज़ार कर रहा हूँ कि कोई यहाँ आयेगा और इस देवता को मुक्त करेगा।

राहगीर—तब से कोई नहीं आया क्या ?

बेवक़ूफ़—आये क्यों नहीं ? राजा आये, ऋषि-मुनि आये, विचारक आये, फौजें आयीं, पर इस देवता को कोई नहीं मुक्त कर सका।

[उसी समय मीटिंग में इन्द्रजीत महाशय का भाषण सुनाई देने लगता है।]

भाषण—हमारे बड़े नेताओं का कहना है कि आज़ादी की लड़ाई कभी पूरी नहीं होती, वह तो लगातार कोशिश और कुरबानी की माँग करती है—और तभी आज़ादी को बरकरार रखा जा सकता है। जब कोई कौम अपनी बुनियादी नीतियों को छोड़कर छोटी-मोटी और संकीर्ण बातों में आ फँसती है, तो उसकी आज़ादी खतरे में पड़ जाती है ···।

राहगीर—यह आवाज़ कहाँ से आ रही है ? यह कौन बोल रहा है ?

[बेवक़ूफ़ हँसता है।]

बेवक़ूफ़—यह उन्नीस सौ उनसठ बोल रहा है। हमसे सैकड़ों वर्ष बाद का एक आदमी है वह !

राहगीर—हटो तुम बड़े मूर्ख हो जी ! भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों एक ही समय कैसे ? मैं तेरी बातों में नहीं आने का।

[उसी क्षण पृष्ठभूमि से किसी स्त्री का आर्त्त स्वर आता है।]

स्त्री—प्रकाश !···मेरा प्रकाश···।

[स्त्री बेहाल दुःखी प्रकट होती है।]

स्त्री—(जैसे चारों ओर ढूँढ़ती हुई) प्रकाश !···कहाँ है रे तू ? प्रकाश···प्रकाश···!

राहगीर—कौन है यह ?

बेवक़ूफ़—देखते नहीं, एक स्त्री है यह। इसका बच्चा गायब हो गया है।

स्त्री—प्रकाश···प्रकाश···!

राहगीर—कैसे इसका बच्चा गायब हो गया ?

बेवक़ूफ़—बाहर के वे लोग, जिन्होंने इस देवता को कैद किया, शायद वही लोग छीन ले गए।

स्त्री—मेरा प्रकाश···मेरा प्रकाश···मुझे वापस दो मेरा प्रकाश।

[यह कहती हुई स्त्री दायीं ओर चली जाती है।]

राहगीर—मैं जा रहा हूँ यहाँ से। मुझे बहुत डर लग रहा है।

[जाते-जाते वह डरकर घूम पड़ता है। बेवक़ूफ़ हँस पड़ता है।]

राहगीर—(सभय) ये कौन लोग आ रहे हैं ?

बेवक़ूफ़—डरो नहीं ! आओ इधर बैठ जाओ। देवता को मुक्त करने अलग-अलग जनपद के तथा जातियों के प्रतिनिधि आ रहे हैं।

[राहगीर बेवक़ूफ़ से कुछ दूरी पर बैठ जाता है।]

बेवक़ूफ़—देखो-देखो, यह ब्राह्मण आ रहा है दक्षिण-भारत का···इसका तेज तो देखो !

[ब्राह्मण का प्रवेश—मंत्र पढ़ता आ रहा है।]

ॐ सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहे
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहे ।
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

(मंत्र पढ़ता हुआ देवता के बन्धनों पर जल छिड़कता है। बेवक़ूफ़ हँसता है।)

बेवक़ूफ़—ओ पुरोहित महाराज ! वे दिन लद गए जब सब काम मन्तर से होता था—यह कलयुग है कलयुग !

ब्राह्मण—चुप रह, बेवक़ूफ़ कहीं का ।

बेवक़ूफ़—अरे भाई, क्रोध करने से क्या होगा ? एक हिन्दू धर्म क्या कम था ! तुम्हीं ने तो सबको जातियों में बाँट दिया। अब पहले फिर सबको एक करो, फिर यह देवता मुक्त होगा ।

ब्राह्मण—चुप रहता है कि नहीं ? बकवास करने चला है।

बेवक़ूफ़—शान्तिः शान्तिः शान्तिः ! शान्ति-मंत्र पढ़ने वाले भले आदमी, तुममें इतना क्रोध ! ओहो, तभी यह सारा रास्ता ही दुर्गम हो गया है। कहीं ऊँचा, कहीं नीचा, कहीं कीचड़, कहीं गड्ढा ।

ब्राह्मण—बेवक़ूफ़ कहीं का !

[प्रस्थान]

बेवक़ूफ़—देखो-देखो उत्तर भारत से वह क्षत्रिय आ रहा है। ज़रा उसका बाहुबल तो देखो !

[क्षत्रिय का प्रवेश। आवेश में वह तलवार खींचता है।]

क्षत्रिय—अरे ! यह मेरी तलवार क्यों नहीं चल रही है ?

बेवक़ूफ़—कैसे चलेगी ? यह तलवार तो नकली है । असली तलवार तो तुमने फूट के हाथों गिरवी रख दी । तुम्हीं तो राजा आम्भीक हो न !

क्षत्रिय—क्या कहा ?

बेवक़ूफ़—तुम थे कहाँ, जब यह देवता पराजित होकर बंदी बनाया गया ?···मैं बताऊँ···।

क्षत्रिय—चुप रह !···देवता सुनो, तुम स्वयं अपनी शक्ति से इन जंज़ीरों को तोड़ क्यों नहीं देते ?

बेवक़ूफ़—(हँसता है) सुनो क्षत्रिय महाराज ! तुमने जितनी लड़ाइयाँ आपस में लड़ी हैं, उनके सारे घाव इस देवता के शरीर पर लगे हैं। और जब तुम्हें धन और शक्ति की ज़रूरत पड़ी है, तब तुमने बार-बार इसी देवता के भीतर को लूटा है। तभी यह अपने अन्तस में हो गया है खोखला। इसमें इसकी शक्ति कहाँ रह गई !

[वही स्त्री फिर 'प्रकाश-प्रकाश' चिल्लाती हुई प्रविष्ट होती है और मंच का चक्कर लगाती हुई चली जाती है।]

बेवक़ूफ़—तभी तो यह पराजित शक्ति अपना प्रकाश ढूंढ़ रही है ।

क्षत्रिय—कहाँ के मूर्ख हो तुम ?

बेवक़ूफ़—यहीं का हूँ महाराज ! नमस्ते ! हमारा रास्ता तो इसी बन्दी देवता में गुम पड़ा है।

क्षत्रिय—(आवेश में) चल, मैं तुझे तेरा रास्ता दिखाऊँ।

(क्षत्रिय बढ़कर बेवक़ूफ़ का हाथ पकड़कर घसीटता है।)

क्षत्रिय—चल ! मैं तुझे तेरा रास्ता बताऊँ !

बेवक़ूफ़—तुम मुझे क्या मेरा रास्ता दिखाओगे जी ! तुम्हीं ने तो मेरा रास्ता दुर्गम किया है। कहीं ऊँचा, कहीं नीचा, कहीं उथला, कहीं गहरा ! पहले सब घावों को बराबर करो, तब न कहीं रास्ता बने !

[क्षत्रिय उसे ढकेलकर चला जाता है। वह फिर अपनी जगह आकर बैठता है।]

बेवक़ूफ़—देखा न ! बड़े चले थे देवता को नक़ली तलवार से मुक्त करने ! ···अरे ! वह देखो पश्चिम के वैश्य महाराज आ रहे हैं ! थैली देखो !

[वैश्य का प्रवेश। वह पुरुष-देवता की परिक्रमा करके अपनी थैली उसके चरणों पर रख देता है।]

वैश्य—(हाथ जोड़े) हे लीलाधारी ! तुम तोड़ डालो अपनी जंज़ीर ! प्रसन्न हो जाओ देवता ! मानवता त्राहि-त्राहि कर रही है।

[बेवक़ूफ़ तेजी से हँसता से।]

वैश्य—कौन हो जी तुम ? बड़े जंगली लगते हो ? इस विपत्ति में तुझे हँसी सूझ रही है ?

बेवक़ूफ़—क्या करूँ ! मैं बेवक़ूफ़ जो हूँ।

वैश्य—आओ लो मुझसे धन ! और इस देवता को मुक्त करो !

बेवक़ूफ़—तुम्हारा धन ? तुम्हारे धन की क़ीमत तो हो गई है खोखली ! तुम्हीं ने तो गृहयुद्ध कराए थे, ताकि तुम्हारा माल महँगा बिके !

वैश्य—चुप रह ! झूठा कहीं का !

[गुस्से में वैश्य का प्रस्थान। बेवक़ूफ़ हँसता है। उसी क्षण उसी स्त्री का प्रवेश। वह देवता की ओर बढ़ती है।]

स्त्री—मेरा प्रकाश कहाँ है ?

बेवक़ूफ़—अरे रे रे ! यह स्त्री···यह भी शूद्र। हाँ-हाँ, माँ तू देवता के बन्धन तोड़ दे। डर नहीं। तुझे देखने वाला यहाँ और कोई नहीं है।

[स्त्री जैसे ही देवता को छूने चलती है, बायीं ओर से वही तीनों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य दौड़े आते हैं।]

तीनों—हाँ-हाँ-हाँ ! खबरदार जो तूने देवता को छुआ !

स्त्री—क्यों ? यह देवता अब भी केवल तुम्हीं लोगों का रहेगा ? मैं इस देवता से अपना प्रकाश माँगने आयी हूँ।

ब्राह्मण—चल-चल ! छूना नहीं इस देवता को।

स्त्री—मैं हाथ जोड़ती हूँ। अपने देवता को आज मुझे छूने दो। कौन जाने यह जंज़ीर मेरे ही हाथों टूट जाए।

ब्राह्मण—चल-चल ! बड़े-बड़े हार गए, गधा बोला कितना पानी ?

क्षत्रिय—जहाँ हम तीनों असफल रहे, यह चली है देवता की जंज़ीर तोड़ने !

स्त्री—नहीं-नहीं ! विश्वास करो। देवता ने मुझे स्वप्न दिया है कि तू मेरे बन्धन खोल ! मैं तुझे तेरा खोया हुआ प्रकाश वापस दिलाऊँगा।

ब्राह्मण—बन्द कर यह बकवास !

क्षत्रिय—भागती है कि नहीं ? शूद्र कहीं की !

स्त्री—आखिर क्यों ? हमीं तो वह अन्न पैदा करते हैं जिससे तुम लोग जीते हो। हमीं तो वह कपड़ा बुनते हैं, जिससे तुम्हारी आबरू है। हमारी ही तो वह मेहनत है जिससे तुम्हारा मन्दिर, तुम्हारा राजप्रासाद और तुम्हारी कोठियाँ खड़ी हैं।

ब्राह्मण—छीः-छीः-छीः ! घोर कलयुग आ गया ! इसकी आज बोली तो देखो !

क्षत्रिय—तेरी यह हिम्मत !

[क्षत्रिय आवेश में तलवार खींचे स्त्री पर झपटता है। वह देवता के चारों ओर भागती है, फिर वह दायीं ओर निकल जाती है और उसके पीछे वे तीनों दौड़ते हैं।]

बेवक़ूफ़—(ठठाकर हँसता है) देखा ! क्या मज़ेदार खेल है ! लोग चाहते हैं कि देवता बन्धन-मुक्त हो जाए, पर ये लोग यह भी नहीं चाहते कि यह बन्धन-मुक्त हो। (जम्हाई लेता हुआ) अच्छा चलो, अब यहाँ कोई नहीं आयेगा। कल सुबह से फिर इन्तज़ार करेंगे। अब चलो यहीं सो जाओ।

राहगीर—यहाँ क्यों सोते हो ? मेरे घर चलो न !

बेवक़ूफ़—कहाँ है तुम्हारा घर ?

राहगीर—मेरा घर ? हाँ, कहाँ है मेरा घर ? अरे···वह तो भूल गया ! अब क्या होगा ?

बेवक़ूफ़—(हँसता है) ऐसे ही मेरा भी हुआ था। बस, अब यहीं सो जाओ।

राहगीर—कहीं और चलो। यहाँ मुझे बहुत डर लग रहा है।

बेवक़ूफ़—बस, सो जाओ और स्वप्न देखो कि कोई यहाँ जरूर आयेगा और चुपके से हमारे देवता को बन्धन-मुक्त करेगा।

राहगीर—सच ! मैं बहुत स्वप्न देखता हूँ।

बेवक़ूफ़—यह तो बहुत अच्छी बात है। अच्छा सो जाओ। अब रात बहुत गहरी हो गई है।

[दोनों वहीं सो जाते हैं। मंच का प्रकाश केवल पुरुष-देवता पर सिमट जाता है, शेष चारों ओर अन्धकार। थोड़ी देर बाद शुभ्र वस्त्र पहने हुए एक वृद्ध पुरुष का प्रवेश। वह सीधे बढ़कर देवता को बन्धन-मुक्त कर देता है और देवता के चरणों में नतमस्तक होता है, फिर वह वापस जाने लगता है।]

देवता—(सहसा) रुको ! तूने आज मुझे बन्धन-मुक्त किया। अब मेरे इन घावों का क्या होगा ! मुझ पर असंख्य चोटें हैं, अनेक रोगों ने मुझमें घर कर लिया है। मुझे अब स्वस्थ कौन करेगा ? मैं निरोग कैसे होऊँगा ? तुमने मुझे मुक्ति दी। अब मुझे मेरी आत्मा कौन देगा। ?···रुको रुको तुम ! मुझे देखो··· मेरा यह शरीर, मेरा खोखला अन्तस ! मेरा फूटा कमंडल ! मेरा बिखरा हुआ रूप ! देखो···देखो···रुको !

[दोनों सोन वाले एकाएक उठ जाते हैं।]

दोनों—कौन ?·· कौन ?

देवता—मेरा मुक्तिदायक ? रोको···रोको उसे। वह चला

जा रहा है।

[देवता लड़खड़ाकर पीछे मंच की सीढ़ियों पर गिर जाता है। राहगीर और बेवकूफ़ बाहर दौड़ते हैं। उनकी 'रुको-रुको' की सम्मिलित पुकार पृष्ठभूमि में कुछ क्षण तक सुनायी देती है।]

देवता—(धीरे-धीरे उठकर) कौन था यह ? जिसके छूते ही मेरे बन्धन इस तरह टूट गए ! कौन था वह, जिसकी आत्मा की जय-जयकार मेरे सूने मन में इस तरह गूंज रही है :

जय हलबल !
जय चरखाबल !
जय समानता !
जय एकता !

कौन था वह, जो मुझे छूकर इस तरह चला गया है कि मैं जड़ से चेतन हो गया ! मैं उसकी पगध्वनि में उसका अपूर्व संगीत सुन रहा हूँ :

जो अब तक मरे थे वे जी उठे
जो युगों से छोटे बने थे
वे खड़े हो जाएँ माथा उठाके !
जो अब तक बिखरा था
टूटा फूटा था
सब पुनः निर्मित होकर एक हो जाएँ
जय सत्य !
जय अहिंसा !

[देवता थककर बैठ जाता है। उसी समय बायीं ओर से फिर वही भाषण सुनाई देने लगता है।]

भाषण—आज़ादी के बाद हमारे देश को जिस एकता के सूत्र में बँधना चाहिए था, वह नहीं बँधा। भाषा के आधार पर अलग-अलग प्रान्तों की माँग और अलग-अलग प्रान्तों के आधार पर अपनी-अपनी भाषा की बुनियाद ! इतनी लम्बी गुलामी के बाद इतनी बेशक़ीमती आज़ादी की हमने इज्ज़त नहीं की। क्योंकि आज़ादी के बाद मुल्क में जितना जागरण होना चाहिए, वह नहीं हो रहा है। लम्बी गुलामी की वजह से जर्जरित देश को जहाँ एकता की डोर में बाँधकर पहले इसके पुनर्निर्माण की आवश्यकता थी वहाँ इसे प्रान्तीयता, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, अराष्ट्रीयता के तत्त्वों ने आ घेरा। इसकी वजह क्या है, इस पर हमें ग़ौर करना है।

देवता—(उठता हुआ) कौन है यह ? यह क्या कह रहा है ? किससे कह रहा है ?

[पृष्ठभूमि में मीटिंग-समाप्ति की तालियाँ बजती हैं।]

देवता—यह क्या है ?

[सभय देवता भागने लगता है। दायीं ओर से गुरुराम और महावीर का प्रवेश।]

गुरुराम—भागते कहाँ हो ? अभी तुम्हारा नाटक खत्म नहीं हुआ ?

महावीर—यह कौन है ?

गुरुराम—आपके कमल हैं।

महावीर—रुको ! सुनो कमल !

गुरुराम—भाग गए !

[भीतर से डॉक्टर देसाई का प्रवेश।]

डॉक्टर—क्यों शोर करते हो भाई ? आखिरकार नाटक में विघ्न डाल ही दिया।

महावीर—डॉक्टर साहब, आप मीटिंग से उठ क्यों आए ?

डॉक्टर—क्या बताऊँ ? मैं आपकी माताजी के इलाज में लगा था।

महावीर—(साश्चर्य) क्या हो गया था माँ को ?

डॉक्टर—आइए, माताजी को देख लीजिए।

[सब भीतर जाने लगते हैं, परदा गिरता है।]

दूसरा अंक

[एक सप्ताह बाद, वही दृश्य, वही स्थान। भीतर से झुंझलाये हुए महावीर का प्रवेश। दरबान पीछे दायीं ओर खड़ा बाहर कुछ देख रहा है। समय—सन्ध्या पाँच बजे।]

महावीर—दरबान ! सुनो दरबान !

दरबान—जी साहब !

महावीर—कमल नहीं दीख पड़ा ?

दरबान—नहीं साहब, वह नहीं दीख पड़ रहे हैं। पता नहीं कहाँ हैं।

महावीर—मुझे अभी पता लगा है, वह सोनापुर गाँव गया है। वहाँ गाँव वालों का कोई मेला लगाया है उसने। उन जाहिल गाँव वालों को वह हिन्दुस्तान का सच्चा इतिहास बता रहा है। (रुककर) सुनो, कमल आये तो मुझे फौरन इत्तिला दो।

[सहसा भीतर से **माँ** प्रविष्ट होती है।]

माँ—क्या है बेटा ? क्यों इतना परेशान हो रहे हो ?

महावीर—तुम्हारे सपूत की करनी की बदौलत ! माँ, सुनो। मैं अपने पिता दीनबन्धुदास की तरह दिल का कमजोर आदमी नहीं हूँ। मैं कमल की सारी आवाज़ बन्द कर सकता हूँ।

आज सात वर्षों से बहुत चुप रहकर देखता रहा ।

माँ—हाय ! कमल ने ऐसा क्या किया ?

महावीर—कल शाम यहाँ के सारे मजदूर-किसानों के बीच कमल ने जो भाषण दिया है, जो उसने आग लगाई है, उसे मैं क़तई बरदाश्त नहीं कर सकता । उसने खुले आम मुझको कहा है कि जितेन्द्र मोहन मेरे आदमी थे, और मैंने अपना इनकमटैक्स बचाने के लिए उन्हें आठ हज़ार रुपये घूस दिये थे । वह केस पकड़ा गया, इसी कारण जितेन्द्र मोहन एम० एल० ए० पद से हटाये गए हैं। और अब मैं इन्द्रजीत को एम० एल० ए० बनाकर फिर वही काम करने जा रहा हूँ । उसने गुरुराम को हत्यारा बताया—कहा कि गुरु ने मेरे लिए, इस ज़मीन की खातिर, कनू के पिता की हत्या करवा दी थी। उसने मुझे आततायी और शोषक कहा ।

माँ—(घबड़ायी हुई) मैं कमल की ओर से तुमसे हाथ जोड़ती हूँ बेटा ! कमल को मैं समझाऊँगी । वह तुमसे इस कटुवचन के लिए क्षमा मांगेगा ।

महावीर—नहीं माँ, सुनो । मैंने फ़ैसला किया है कि तुम अपने कमल को लेकर या तो गया चलो जाओ या कलकत्ते की अपनी कोठी में जाकर रहो ।

माँ—क्यों, मैं यहाँ नहीं रह सकती क्या ?

महावीर—तुम यहाँ क्यों नहीं रह सकतीं, पर अब यहाँ कमल नहीं रह सकता ।

माँ—क्यों ?

महावीर—क्योंकि यहाँ श्रीदास इण्डस्ट्री चलेगी । यह इण्डस्ट्री यहां की खाली-पिछड़ी ज़मीन पर फैल जाएगी, ताकि यहाँ के हज़ारों बेकार लोगों को नौकरी मिले, यहाँ के असंख्य भूमिहीन किसानों को रोज़ी मिले । (रुककर) आखिर माँ, मैं भी तो यही चाहता हूँ कि देश की उन्नति हो। हमारी पंचवर्षीय योजनाएँ सफल हों। इस देश में औद्योगिक विकास हो, और देश की गरीबी दूर हो । यह देश एकता की डोर में बँधे ।

[उसी क्षण दायीं ओर से कमल का प्रवेश]

कमल—झूठ है। तुम कभी नहीं चाहते कि इस देश की गरीबी दूर हो। क्योंकि तुम लोग लखपती से करोड़पती और करोड़पती से अरबपती बनना चाहते हो । तुम लोग देश की एकता नहीं चाहते, क्योंकि तुम लोग समझते हो कि देश की एकता के मतलब हैं इस देश के सारे गरीब एक हो जाएँगे और तुम लोग जो इतने विशाल देश में प्वाइण्ट हाफ़ परसेण्ट से भी कम हो, उस एक भारत के सामने कहीं के न रह जाओगे ।

माँ—कमल ! कमल ! क्यों बोलते हो तुम इस तरह ? यह तेरे पूज्य बड़े भाई हैं ।

कमल—काश यह मेरे होते माँ ! तो यह मेरे दुख को समझते ।

महावीर—क्या है तुम्हारा दुख ?

कमल—यह भी बताना होगा क्या ?

महावीर—क्यों नहीं ?

कमल—सुनो, मैं तुम्हारी ही भाषा में अपने दुख को बता रहा हूँ—मैं ऐसे देश का नागरिक हूँ जहाँ की पूरी जनसंख्या के पच्चीस प्रतिशत मानव-वर्ग के प्रति आदमी की कमाई

दस रुपये मासिक से भी कम है। चवालीस प्रतिशत वे हैं जिनकी कमाई दस और सोलह रुपये मासिक के बीच है। सौ रुपये प्रतिमाह कमाने वालों की संख्या सिर्फ एक प्रतिशत है। और इस महादेश में आप-जैसों की संख्या केवल प्वाइण्ट थ्री परसेण्ट है। इतनी भयानक असमानता ! निन्यानवे प्रतिशत गरीब और एक प्रतिशत अमीर। यह अपमान है इस देश का।

महावीर—तो आपका दुख इस देश की अर्थ-व्यवस्था को कर लेहै ?

कमल—नहीं, मेरा दुख इस देश के समूचे जीवन को लेकर है। इसके घायल, खंडित, अस्तव्यस्त शरीर से लेकर इसके बिखरे मन, अस्वस्थ प्राण और इसकी सोयी हुई आत्मा तक मेरा दुख फैला है।

महावीर—तो ? इसकी जिम्मेदारी अकेले मुझ पर है क्या ?

कमल—(चुप रहता है।)

महावीर—बोलो न ! यह ग़रीबी क्यों है ?

कमल—क्योंकि अमीरी है।

महावीर—अमीरी क्यों है ?

कमल—क्योंकि ग़रीबी है।

महावीर—इस देश में इतना अराष्ट्रीय तत्त्व क्यों उभर आया ?

कमल—विचार की ग़रीबी से।

महावीर—देश उन्नति क्यों नहीं कर पा रहा है ?

कमल—कर्म की ग़रीबी ! चेतना की ग़रीबी ! इतिहास की

ग़रीबी !

महावीर—पर हम उस श्रेणी में नहीं आते।

[कमल हँस पड़ता है और हँसता ही रह जाता है।]

महावीर—बन्द करो यह हँसी। सभ्यता सीखो।

कमल—ग़रीबी का सभ्यता से कोई सम्बन्ध नहीं। मैं तुम्हारी सारी सभ्यता का जामा पहने हुए पाँच वर्ष तक विदेश में भटक आया हूँ। हमारे वेद, उपनिषद्, हमारे महाकाव्य, हमारी कला, हमारे बुद्ध, अशोक, अकबर, विवेकानन्द, गांधी—यह तो सब हमारा अतीत है। पश्चिम का आदमी हमसे पूछता है कि तुम्हारा वर्तमान क्या है ? मैं उन्हें उत्तर देता था कि हम सत्य और अहिंसा हैं। तब वे मुझसे पूछते कि यह सत्य क्या है ? मैं उन्हें उत्तर देता कि सत्य यह है कि आत्मा अमर है। यह सुनते ही वे लोग हँस पड़ते, 'ओहो, अब समझे, तभी तुमने गांधी जी की हत्या कर दी ! अच्छा, और यह तुम्हारी अहिंसा क्या है ?' मैं उन्हें उत्तर देता, 'सब जीवों में वही एक ईश्वर, वही एक आत्मा निवास करती है' इसलिए सभी जीवों के प्रति दया, समानता और श्रद्धा। मेरी यह बात सुनकर वे लोग आँख बचाकर कहने लगते, 'ओहो, यही है तुम्हारी अहिंसा, अब समझे—तभी तुम्हारे देश में हर साल इतने लोग—कभी जाड़े से मर जाते हैं, कभी लू खा जाते हैं और कभी बाढ़ में बह जाते हैं। मेलों में दब जाते हैं, भूखों मर जाते हैं।'

महावीर—चुप रहो ! हम वह मूर्ख किसान-मज़दूर नहीं, जो तुम हमें बे-सिर-पैर का भाषण देते जा रहे हो।

[महावीर का तेज़ी से भीतर प्रस्थान। दरबान अपनी जगह खड़ा

रहता है !]

माँ—अच्छा बेटा, अब शाम हो गई। घर में चलो।

कमल—तुम्हीं तो माँ, खामखाह मुझे इस घर में बाँधे हो। विश्वास करो माँ, मैं इस घर को अपना नहीं समझ पाता। इस कोठी में जो यह पत्थर की सीढ़ी बनी है न, जो एक मनुष्य को बहुत ऊँचे चढ़ा ले जाती है, इसे सामने देखकर माँ, मुझे ऐसा लगने लगता है कि जैसे मैं छोटा हूँ और यह पत्थर की सीढ़ी मुझसे बड़ी है।

माँ—तुम उधर के फाटक से घर में आया-जाया करो बेटा, उधर कितने अच्छे फूल-पौधों के गमले हैं ?

कमल—क्यों दरबान, कलकत्ते से गमलों में लगे हुए जो बरगद और पीपल के छोटे वृक्ष आये थे, वे कैसे हैं अब ?

दरबान—खूब हरे-भरे हैं साहब !

कमल—अच्छे लगते हैं तुम्हें ?

दरबान—साहब, कहाँ असली बरगद और पीपल के लम्बे-चौड़े पेड़ और कहाँ वे बेचारे—एक टहनी के बराबर !

माँ—वे गमले किधर हैं दरबान ? मैंने उन्हें नहीं देखा।

कमल—तुमने देखा ही क्या माँ ! आओ, चलो मैं दिखाता हूँ तुम्हें। (सहसा) और हाँ माँ, देहरादून से मेरा अगस्त्य आने वाला है, उसकी अब छुट्टियाँ होने वाली हैं न ? वह कब आ रहा है ?

माँ—बस, वह आज-ही-कल में आने वाला है। शायद आज ही रात को वह आ जाए।

कमल—और गया से अगस्त्य की माँ—मेरी भाभीजी कब आ रही हैं ?

माँ—वह भी बस आने को ही हैं।

[माँ के साथ कमल का भीतर प्रस्थान। दरबान स्टूल पर बैठ जाता है। कुछ ही क्षण बाद दायीं ओर से सारंग और कनू का प्रवेश।]

कनू—दरबान ! कमल बाबू को बुला दो। उन्हें एक बहुत जरूरी खबर देनी है।

दरबान—नहीं, हुक्म नहीं है।

कनू—अच्छा, खबर ही उन तक पहुँचा दो

दरबान—मैं भीतर नहीं जाता। मेरी ड्यूटी सिर्फ यहीं है।

[अन्दर से माँ निकलती है।]

माँ—क्या है ? कमल तुमसे नहीं मिल सकता। उसे तुम लोग एक क्षण भी दम नहीं लेने देते।

सारंग—नहीं माताजी, ऐसी बात नहीं। हमें कमल बाबू को एक बहुत ज़रूरी खबर देनी है, इसी लिए इस समय हमें यहाँ आना पड़ा।

कनू—हमें क्षमा कीजिए, माँ !

[भीतर से कमल का प्रवेश]

कमल—क्या है भाई ?

कनू—भैया गज़ब हो गया ! सोनापुर गाँव में जहाँ आज दोपहर में आप गये थे…………

कमल—हाँ……हाँ……

सारंग—आपके वहाँ से चले आने के बाद ही सोनापुर गाँव में रामनाथ चौधरी के घर डाका पड़ा।

माँ—तो इसमें कमल का क्या मतलब ?

कमल—मतलब क्यों नहीं है ? जो कुछ हमारे चारों ओर घट रहा है, उससे हम सब जुड़े हैं माँ !

कनू—डाकुओं से गाँववालों की मुठभेड़ हुई। चौधरी के बड़े लड़के बलदेव और डाकुओं में खूब जमकर बन्दूक चली। डाकू धन नहीं लूट सके—उल्टे चौधरी की बन्दूक से कई डाकू घायल हुए।

सारंग—पर सोनापुर गाँव के लोग डर रहे हैं कि आज रात उन निराश डाकुओं का फिर से और भी जबरदस्त हमला होगा।

कमल—माँ, मैं सोनापुर जा रहा हूँ।

मां—यही कहने आये थे तुम लोग ?

कनू—माताजी, हमें क्षमा कीजिए, हम हाथ जोड़ रहे हैं आपके।

मां—लेकिन रात में तुम वहाँ पैदल नहीं जा सकते। मैं ड्राइवर से कहती हूँ, वह तुम्हें मोटर से ले जाएगा। दरबान, तुम भी जाओ कमल के साथ। बहुत सावधान रहना !

दरबान—जी, बहुत अच्छा !

[माँ भीतर जाती है। दरबान के साथ वे तीनों दायीं ओर जाते हैं। कुछ ही क्षण बाद पीछे दायीं ओर से हाथ में दीपक लिये अमृता का प्रवेश। वह चारों ओर देखकर फिर दीपक को मंच पर रख देती है। उसके सामने नतमस्तक होती है, फिर जमीन को प्रणाम करती है, और तेजी से वापस जाने लगती है। उसी समय भीतर से महावीर का प्रवेश।]

महावीर—रुको ! कौन हो तुम ?

[अमृता घूमकर खड़ी रह जाती है।]

महावीर—हूं ! तो तुम नहीं मानोगी ? अब समझा—कमल ने यह मंच इसीलिए बना रखा है, ताकि तुम यहाँ हर मंगलवार को अपने पिता की पुण्य स्मृति में दीपक जलाओ।

अमृता—हमारी इस जमीन के लिए मेरे पिता मंगलबरेण की हत्या हुई है।

महावीर—झूठ है यह ! तुम्हारे पिता की हत्या तुम्हारे रिश्तेदारों ने की……तेरे ससुराल वालों ने।

अमृता—यह झूठ है। कैसी मेरी ससुराल ?

महावीर—सुनो ! जब तुम सात वर्ष की ही थीं, तभी तुम्हारी शादी तुम्हारे पिता मंगलबरेण ने अरइल घाट के एक धोबी के लड़के से कर दी थी। जब तुम बड़ी हुईं तो तुम्हारा भविष्य देखकर तुम्हारे भाई कनू ने अपने बाप को भर दिया कि तुम्हें वहाँ न विदा किया जाए, तुम्हारी दूसरी शादी हो। मंगलबरेण ने यही किया। उसने अस्वीकार कर दिया कि तुम्हारी शादी ही नहीं हुई है।

[अमृता हँसती है।]

महावीर—क्या हँस रही है ?

अमृता—कितनी अच्छी कहानी आप कहते हैं। (हँसती है।) मेरा पति……मेरी शादी !

महावीर—यही सच है—विश्वास करो। और तुम लोग अपने दिल से यह झूठी बात निकाल दो कि तुम्हारे पिता की हत्या इस जमीन के कारण मेरी साजिश से गुरुराम के जरिए हुई है। तुम्हारे पिता की हत्या तुम्हारे निराश पति ने की।

अमृता—(हँसती है।) निराश पति ! मेरी शादी !

(हँसती है।)

महावीर—क्यों हँसती है इस तरह मूर्ख लड़की ! ले मैं इस जमीन का तुझे चौगुना दाम अभी देता हूँ।

अमृता—चौगुना ?

महावीर—अच्छा चलो पाँचगुना।

अमृता—(उँगलियों पर गिनती है।) पाँच गुना ? एक, दो, तीन, चार ! अरे, मुझे तो चार के आगे गिनती ही नहीं आती !

महावीर—अच्छा-अच्छा, दस गुना लो ! जानती हो अब इस ज़मीन की कीमत कितनी हो गई ? चालीस हज़ार रुपये !

अमृता—चालीस हज़ार ? यह क्या होता है बाबू !

महावीर—चल, इतने रुपये मैं स्वयं गिन देता हूँ, इसी समय।

अमृता—इतने रुपये ? हमारी गरीबी का इतना दाम ? नहीं, नहीं बाबू ! हमारी गरीबी को मत खरीदो–यही तो सिर्फ हमारे पास बचा है।

महावीर—बदज़बान लड़की ! फिर आज से तू कान खोलकर सुन ले, अब आइन्दा तू यहाँ दीपक नहीं जलाएगी !

अमृता—क्यों बाबू, दीपक तो प्रकाश देता है।

महावीर—नहीं, दीपक जलाता भी है।

अमृता—पर दुश्मन को नहीं !

महावीर—(गुस्से से) बदतमीज़ कहीं की ! (चिराग़ को पैर से मारते हुए) यह ले अपना चिराग़ और भाग जा यहाँ से। बुझ गया अब तेरा चिराग़।

अमृता—(चिराग़ उठाती हुई) पर इसकी रोशनी नहीं बुझी।

महावीर—भाग जा यहाँ से, नहीं तो मैं तेरी ज़बान खिचवा लूँगा।

अमृता—बस !···अच्छा नमस्ते बाबू !

[जाने लगती है।]

महावीर—रुको अमृता ! रुको···!

अमृता—(लौटती है) क्या है बाबू ?

महावीर—सुना है तुम कमल को गीत सुनाती हो···और तुम बहुत अच्छा गाती हो।

अमृता—हाय ! यह किसने कहा आपसे ?

महावीर—तुम्हारे उन्हीं गीतों ने।

अमृता—गीतों ने ?

महावीर—हाँ, तुम लोगों की एक-एक हरकत की खबर मेरे पास आती रहती है। उन्हीं साँसों में तुम्हारे गीत भी मुझे कभी-कभी सुनायी दे जाते हैं।

अमृता—कोई गीत याद है आपको बाबू ?

महावीर—नहीं, मुझे गीत नहीं याद रहते।

अमृता—आप मेरे गीत सुनेंगे बाबू ?

महावीर—क्यों नहीं, सुनाओ न !

अमृता—अच्छा, तो पहले मैं अपने इस चिराग़ को जला लूँ बाबू !

महावीर—(चुप है।)

[अमृता बढ़कर उसी स्थान पर चिराग़ रखती है और दियासलाई निकालकर उसे जलाती है।]

महावीर—नहीं, तुम यह चिराग़ अब यहाँ नहीं जलाओगी।

अमृता—फिर मेरे गीत नहीं सुनोगे ?

महावीर—नहीं, चली जाओ सीधे तुम यहाँ से।

अमृता—नमस्ते बाबू !

[अमृता चली जाती है। महावीर उसी ओर देखते रह जाते हैं। पृष्ठ-भूमि में अमृता गा रही है।]

हे मन सोच-विचार राम क्यस राजा हैं
जिन सीता को दिया बनवास
राम क्यस राजा हैं।
फट जा रे धरती समा जा रे सीता
जननी को दिया बनवास
राम क्यस राजा हैं।

[अमृता का गान धीरे-धीरे दूर चला जाता है। महावीर का भीतर प्रस्थान। उसी क्षण पीछे बायीं ओर से गुरुराम का प्रवेश। वह अपने हाथों में किसी घायल को सँभाले हुए है। घायल को सीढ़ियों पर रखकर वह डॉक्टर देसाई के बन्द दरवाजे पर दस्तक देता है।]

गुर—डॉक्टर साहब ! डॉक्टर साहब !

आवाज—(भीतर से) कौन ?

गुरु—मैं हूँ गुरुराम !

[भीतर से डॉक्टर देसाई आते हैं।]

डॉक्टर—क्या है ?

गुरु—डॉक्टर साहब, मेरे इस आदमी को गोली लग गई है, इसे फ़ौरन सँभालिए !

डॉक्टर—कैसे गोली लग गई इसे ? कौन है यह ?

गुरु—पहले आप इसके शरीर से गोली निकालें डॉक्टर साहब !

डॉक्टर—यह है कौन ?

गुरु—घायल है घायल। वक्त बरबाद न कीजिए। इसकी दशा गम्भीर है।

[गुरु घायल को उसी तरह सँभालकर डॉक्टर देसाई के घर में ले जाता है, साथ ही डॉक्टर साहब भी सहायक हैं। क्षण-भर बाद भीतर से अकेले गुरुराम का प्रवेश। वह चारों ओर चौकन्नी दृष्टि से देखता है, जैसे वह अपना पहरा दे रहा हो। सहसा भीतर से डॉक्टर देसाई आते हैं।]

डॉक्टर—यह घायल तुम्हारा कौन है गुरु ? मुझे सच-सच बताओ।

गुरु—इस प्रश्न से आपका कोई मतलब नहीं। यह घायल है। उसके शरीर से आप गोली निकालिए, उसकी दवा कीजिए, उसे अच्छा कीजिए और अपनी पूरी फ़ीस और कीमत वसूल कीजिए। जल्दी कीजिए। समझिए इस समय वह सिर्फ़ घायल है, आदमी नहीं है वह।

डॉक्टर—पर मैं तो डॉक्टर और आदमी दोनों हूँ न ! मुझे मरीज़ और घायल का नाम-पता अपने रजिस्टर में लिखना होगा। मुझे उसकी कैफ़ियत जाननी होगी।

गुरु—एक शर्त पर। आप किसी को इस बारे में ज़रा भी नहीं बताएँगे।

डॉक्टर—(चुप है।)

गुरु—आज करीब पाँच बजे इसे सोनापुर गाँव में गोली लग गई है। बस समझे न !

डॉक्टर—कहाँ का रहने वाला है यह ?

गुरु—(बिगड़कर) इन फ़िज़ूल बातों से आपका कोई तलब नहीं ।

डॉक्टर—तो सीधे कहो न ! यह डाकू है । सोनापुर के डाके में इसको गोली लगी है ।

गुरु—(चुप है ।)

डॉक्टर—ले जाओ, मैं डाकुओं की दवा-दारू नहीं करता।

गुरु—क्या कहा ?…तुम गलत सोचते हो। डॉक्टर का धर्म चोर-डाकू देखना नहीं, उसकी पीड़ा देखना है।

डॉक्टर—यह तुम कह रहे हो ?

गुरु—हाँ, मैं कह रहा हूँ। मैं…

डॉक्टर—पर याद करो गुरु, पिछले महीने जमुनापट्टी में जब हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ था, तब तुमने यह नहीं कहा था कि आप ब्राह्मण हैं, इसलिए आपके धर्म में पहले घायल हिन्दुओं की दवा…।

गुरु—मैं वह आज भी कहता हूँ।

डॉक्टर—फिर दो मुख हैं आपके। एक मुख आपका यह कहता है कि इन्सान को इन्सान के रूप में न देखो। उसे हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच में बाँटकर देखो। और आपका दूसरा मुख यह कहता है कि डॉक्टर का धर्म चोर-डाकू देखना नहीं, उसकी पीड़ा देखना है। तुम्हारे लिए चोर-डाकू श्रेयस्कर हैं। तुम्हारी दृष्टि में हिन्दू और ब्राह्मण की पीड़ा बड़ी है और मुसलमान की पीड़ा छोटी है।

गुरु—बन्द करो यह बहस। जल्दी उसके शरीर से गोली

निकालो, नहीं तो…

डॉक्टर—नहीं तो क्या ?

गुरु—उसका सरदार पीछे पेड़ के नीचे खड़ा है, तुम्हें वह अभी गोली मार देगा।

डॉक्टर—ओह ! तो यह है तुम्हारा नैतिक बल ? तो तुम्हारा यह मंच-गान झूठा है, 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः'।

[भीतर प्रस्थान। गुरुराम बेचैनी से मंच के नीचे-ऊपर घूमने लगता है, उसी समय दायीं ओर से दरबान के साथ कमल का प्रवेश।]

कमल—कौन !

गुरु—गुरु।

कमल—इस समय यहाँ इस तरह क्यों घूम रहे हो ?

गुरु—तुम्हारा मतलब ?

कमल—क्यों नहीं ? यहाँ तुम रात को इस तरह घूमने वाले कौन होते हो ?

गुरु—मैं…मैं…अपना एक मरीज़ लेकर यहाँ आया हूँ। डॉक्टर साहब उसकी दवा कर रहे हैं।

[उसी क्षण भीतर से एक लम्बी कराह की आवाज़ आती है।]

कमल—कोई घायल है क्या ?

गुरु—कोई होगा, तुम्हारा मतलब !

कमल—क्यों नहीं ? मुझे अपने पूरे समाज के दुःख-सुख से मतलब है।

[कमल डॉक्टर साहब के घर में जाने लगता है।]

गुरु—(रोकता हुआ) नहीं, तुम इस समय अन्दर नहीं जा

पड़ेगा ?

गुरु—(चुप रहता है।)

कमल—तुमने जो इतने घोर अपराध में अपने हाथ रँगे हैं, यह आखिर किस लिए ?

गुरु—यह अपनी शक्ति की बात है।

कमल—हूँ। इस शक्ति के मद में तुम्हें पुलिस का भय नहीं ?

गुरु—नहीं।

कमल—समाज का ?

गुरु—नहीं।

कमल—ईश्वर का भी नहीं ?

गुरु—(चुप रहता है।)

कमल—तुम अपने-आपसे कहाँ भागकर जाओगे ? उसी ईश्वर का ही तो नाम समाज है। वही अपने एक से अनेक हो गया है—एकोऽहम् बहुस्याम्। यह मंत्र तुम्हारा ही तो है।

[भीतर से डॉक्टर देसाई का प्रवेश]

डॉक्टर—तुम्हारे मरीज़ के शरीर से मैंने गोलियाँ निकाल दीं। अब तुम उसे मेरे यहाँ से ले जाओ।

गुरु—अभी वह नहीं जा सकता। जब वह खुद जाने लायक होगा, तभी वह जायेगा।

डॉक्टर—क्या कहा ?

गुरु—वही जो आपने मुझसे सुना।

कमल—इस बीच सरकार और उसकी पुलिस क्या चुप बैठी रहेगी ?

गुरु—मुझे इत्मीनान है सब चुप बैठे रहेंगे। भय सबसे बड़ी ताकत है।

[गुरु का प्रस्थान]

डॉक्टर—कमल बाबू, पीछे वहाँ पेड़ के नीचे गैंग का सरदार खड़ा है। गुरुराम उसे अपनी सफलता बताने गया है। (रुककर) एक बात और बताऊँ! वह घायल डाकू कौन है ?

कमल—मैं नहीं जानता।

डॉक्टर—सुनो, यह तुम्हारी कोठी का निकाला हुआ वही दरबान है—बिल्लूसिह।

कमल—(साश्चर्य) बिल्लूसिह !

डॉक्टर—हाँ। इस गुरुराम के विषय में आपके विचार सच निकले। इसने अपनी इसी हिंसा, भय और साम्प्रदायिकता की शक्ति से इन्द्रजीत को 'बाई-इलेक्शन' में जितवा लिया है। और अब गुरुराम अपनी उसी अधम हिंसा के जाल में मुझे बाँधना चाहता है। (रुककर) पर मैं अब पुलिस को जरूर सूचना दूँगा।

कमल—धैर्य से काम लीजिए, डॉक्टर साहब! हिंसा और हिंसा के प्रतिकार का कहीं अन्त नहीं। एक हिंसा में आकर मेरे बड़े भाई महावीरदास ने अपने उस दरबान बिल्लूसिंह को पुलिस के हाथों पिटवाकर उसे यहाँ से निकाल दिया और आज उसे डाकू होना पड़ा। और यदि आज हम इस भयानक घटना की सूचना पुलिस को देते हैं तो यह सब और भी भयानक होगा। वस्तुतः इस भय को हमें विश्वास से जीतना होगा।

डॉक्टर—तो आपको मनुष्य के हृदय-परिवर्तन में विश्वास

है क्या ?

कमल—हाँ, विश्वास है मुझे। पर यह हृदय-परिवर्तन अपने-आपसे हो जाएगा, इसमें मेरा विश्वास नहीं। इस हृदय-परिवर्तन के लिए पहले समाज के ढाँचे में परिवर्तन होना चाहिए, जो मनुष्य को उसकी मनुष्यता से गिराकर उसे चोर, डाकू और अपराधी होने के लिए विवश करता है। इस दूषित भ्रष्ट-हृदय की जिम्मेदारी हमारे आज के समाज पर है जो हमें उदार नहीं होने देता, हममें कड़े भाव-विचार नहीं आने देता। और जो हमारे जीवन को गरीबी से ऊपर नहीं उठने देता, जो हमारे भीतर प्रकाश नहीं आने देता।

डॉक्टर—आपका मतलब, पहले समाज शुद्ध हो तब व्यक्ति का हृदय···।

कमल—(बीच ही में) समाज और व्यक्ति दोनों सत्ताएँ अलग-अलग नहीं है। जीवन, समाज और व्यक्ति, ये तीनों उसी प्रकार हैं जैसे हमारी एक ही सत्ता में शरीर, प्राण और आत्मा।

डॉक्टर—पिछले दिनों आपने जो यहाँ वह नाटक रचा था, उसमें शायद आपने यही तो दिखाया था कि एक हजार वर्ष की हमारी इतनी लम्बी गुलामी, इतनी लूट-खसोट, इतने शोषण के बाद जिस शक्ति से हमारा राष्ट्र-देवता मुक्त हुआ, वह किसी एक जाति, एक धर्म, एक प्रान्त की शक्ति नहीं थी, वरन् वह एक राष्ट्र-शक्ति थी, जिसके प्रतीक थे वह···।

कमल—लोगों ने वह नाटक पूरा कहाँ होने दिया ? आप जानते हैं क्यों ? यह हमारे रक्त में है कि हम यथार्थ से अपना मुंह फेरकर खड़े होते हैं, उससे दूर भागते हैं, ताकि यथार्थ से हमारा सामना ही न हो, जिससे कि हम बड़ी मौज से ऊँची-ऊँची बातें कर सकें—अपने कल्याण की नहीं, विश्व-कल्याण की; अपने देश की सीमा की नहीं, क्यूबा, कटांगा, लाओस और जर्मनी की सीमा की; अपने समाज की अपावन गरीबी, निर्लज्ज गन्दगी और जड़ अन्धकार की नहीं, आत्मा और परमात्मा की बातें।

डॉक्टर—तो आगे आपके उस नाटक में क्या है ? निश्चय ही उसमें गांधीजी का खोजा हुआ रास्ता होगा।

कमल—गांधीजी के रास्ते की मंजिल इस देश की आजादी थी। वह अपने इस महान् धर्म में पूर्ण हुए। किन्तु जब वह अपनी इस मंजिल को पारकर फिर देश को शुद्ध करने चले, इसके दूषित मन-प्राण को परिवर्तित करने चले, तो इसी कुरूप समाज ने उन्हें गोली मार दी। क्योंकि आजादी के बाद वह केवल मसीहा थे, राजतन्त्र नहीं। राजतन्त्र तो उस समाज के हाथ में चला गया था, जिसमें गुलामी के वे सारे नासूर अभी जिन्दा थे—जातिवाद, सम्प्रदायवाद, प्रान्तीयता, गुंडागीरी, अमीरी और गरीबी ! और इस सबके बीच शक्ति प्राप्त करने की भयानक भूख !

[भीतर से माँ का प्रवेश]

माँ—कमल, देहरादून से तुम्हारा पप्पू आ गया।

कमल—पप्पू नहीं माँ, मेरा अगस्त्य।

[दौड़ा हुआ भीतर से अगस्त्य आता है। चौदह वर्ष का कुमार 'नेवी ब्लू' पेंट पर उसी रंग की जर्किन पहने।]

अगस्त्य—अंकिल ! जै हिन्द !

[कमल बढ़कर उसे अपनी बाँहों में उठा लेता है।]

कमल—(ऊपर उठाकर) पहले अपने बड़े चाचाजी,

डाक्टर साहब को सैल्यूट करो। (करता हुआ) इस तरह, जै हिन्द !

अगस्त्य—(सैनिक-जैसा) जै हिन्द !

डॉक्टर—जै हिन्द बेटे !

कमल—तुम्हारी जाति ?

अगस्त्य—भारतीय।

कमल—तुम्हारा धर्म ?

अगस्त्य—जागे नव भारतेर जनता
एक जाति एक प्रान
एकता।

[माँ और डॉक्टर देसाई दोनों हँसते हैं।]

कमल—तुम्हारी चिन्ता ?

अगस्त्य—द फ़िलॉसफ़र्स हेव दस फॉर ट्राइड टु इंटरप्रेट द वर्ल्ड, द प्रॉब्लम इज़ हॉउ टु चेन्ज इट। (दार्शनिकों ने इस संसार के विवेचन का मान किया है, समस्या यह है कि इसमें परिवर्तन कैसे लाया जाए।)

कमल—शाबाश ! तुम्हारा गान ?

अगस्त्य—जनगणमन-अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा
द्राविड़ उत्कल बंग
विन्ध्य हिमाचल जमुना गंगा
उच्छल जलधि तरंग…।

कमल—तुम्हारा नाम ?

अगस्त्य—अगस्त्य।

कमल—जून-जुलाई-अगस्त वाला अगस्त ?

अगस्त्य—नहीं, वह अगस्त्य—टिटी टिटिहरी स्तुति कीन्ही, तब अगस्त्य मुनि आज्ञा लीन्ही। वह अगस्त्य जिन्होंने एक साँस में टिटिहरी के बच्चों की रक्षा के लिए समुद्र सोख लिया था।

कमल—और आज अगस्त्य का काम ग़रीबी के समुद्र को सोख लेना, जिसके कारण मनुष्य का अपना विश्वास खो गया है। चारों ओर फैले अन्धकार के समुद्र को पी लेना, जिसमें हमारा प्रकाश खो गया है। अगस्त्य, तुम्हें इस गँदले समुद्र को सोखकर एक नये समद्र की रचना करनी होगी, जिसे टैगोर ने गाया है—

'हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे,
एई भारतेर महामानवेर सागर तीरे'।

[परदा गिरता है।]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[पिछले दृश्य से दस दिनों बाद। सन्ध्या के पाँच बजे हैं। भीतर से माँ निकलकर पप्पू को पुकार रही है।]

माँ—पप्पू ! पप्पू ! (परेशान होकर) देखो न, सब-के-सब न जाने कहाँ हैं ! (फिर पुकारती है।) पप्पू !

[भीतर से डॉक्टर देसाई का प्रवेश।]

डॉक्टर—पप्पू नहीं माताजी, अगस्त्य कहिए अगस्त्य।

माँ—(हँस पड़ती है) यह अगस्त्य नाम उसी कमल का ही रखा हुआ है। उसकी सब चीजें निराली होती हैं। आपको पता है, कमल के साथ पप्पू किधर गया ?

डॉक्टर—इधर गाँव की तरफ़ गये हैं वे लोग।

माँ—पर देखिए शाम हो गई, उन्हें अब तो लौट आना चाहिए।

डॉक्टर—बस आ ही रहे होंगे वे लोग।

माँ—महावीर बहुत नाराज़ हो रहा है। यह कमल क्यों ले गया पप्पू को गाँव में घुमाने ? पिछले दिन वह उसे शहर दिखाने ले गया था, जैसे पप्पू ने शहर देखे ही नहीं हैं।

डॉक्टर— कोई बात नहीं, देखने दीजिए।

माँ—पर पप्पू का पिता महावीर जो नाराज़ होता है। ड्राइवर को दौड़ाया है पप्पू को लाने को। वह नहीं लौटा तो दरबान को भेजा है।

[सहसा भीतर से महावीर का प्रवेश]

महावीर—और अब मैं खुद जा रहा हूँ। मैं अपने पप्पू को कमल के हाथों बिगड़ने नहीं देना चाहता। वह दून स्कूल से यहाँ अपने घर एक महीने की छुट्टियाँ बिताने आया है।

डॉक्टर—कमल बाबू कहते थे कि अपने अगस्त्य बेटे को भारतवर्ष दिखा रहा हूँ।

महावीर—भारतवर्ष नहीं अपना बिगड़ा हुआ सर दिखा रहे हैं। माँ, तुम अन्दर जाओ।

माँ—वे अभी आ रहे होंगे बेटा, इतना परेशान मत हो।

[माँ का प्रस्थान]

महावीर—डॉक्टर साहब, मैं तो तंग आ गया हूँ इस कमल से। मुझे माँ की चिन्ता है, नहीं तो मैं कमल को यहाँ रहने नहीं देता।

[पृष्ठभूमि में उसी क्षण अमृता के गाने का स्वर आता है।]

रे मन सोच विचार राम क्यस राजा हैं।
जिन सीता को दियो बनवास
राम क्यस राजा हैं।
फट जा धरती समा जा री सीता
क्यस राम जी का हाथ
राम क्यस राजा हैं।
इस काया पर दूब उगेगी

गउएँ चरि-चरि जायें,
इस काया पर बाट चलेगी
सब आवें सब जायें।
इस काया पर गंग बहेगी
प्रजा करे स्नान
राम अस राजा हैं।

महावीर—(बढ़कर) ऐ पागल लड़की ! यहाँ क्यों गा रही है ? भागती है कि नहीं ?

[हँसती हुई अमृता का प्रवेश]

अमृता—(मंच पर साधिकार आकर बैठ जाती है।) क्यों भागूं ! मैं अपने खेत में गाऊँ भी नहीं क्या ?

महावीर—ओहो ! तो अब भी इस लॉन को अपना खेत मानती हो ?

अमृता—यह ज़मीन मेरी नहीं तो किसकी है ?

महावीर—उसकी जिसके अधिकार में हो।

अमृता—अधिकार क्या होता है बाबू ?

महावीर—अभी तेरा कान पकड़वाकर यहाँ से निकलवा देता हूँ—यही अधिकार होता है।

[अमृता हँसती है।]

महावीर—देखा न डॉक्टर साहब, यह कमल साहब बोल रहे हैं। इससे ज़रा आप पूछिए कि यहाँ यह गाना क्यों गाती है ?

डॉक्टर—अमृता, यहाँ तू गाना क्यों गाती है ?

अमृता—पता नहीं।

[हँसती रहती है।]

महावीर—इसका दिमाग़ खराब है।

[हँसती है।]

महावीर—यहाँ से जाती है कि नहीं ?

अमृता—मेरा गाना नहीं सुनोगे बाबू ?

महावीर—तू नहीं भागेगी यहाँ से ?

अमृता—नहीं··· नहीं।

[हँसती है।]

महावीर—ओहो ! तो इसके मानी यह हुए कि कमल अब यहाँ आ ही रहा है, नहीं तो यह मुझसे इस तरह से बात नहीं करती।

डॉक्टर—अरे···रे···मैं तो भूल ही गया ! अब याद आया मुझे ! कमल बाबू आज फिर यहाँ अपना नाटक खेलने जा रहे हैं।

[अमृता हँसती है।]

महावीर—कैसा नाटक ?

डॉक्टर—वही पिछला नाटक, जिसमें कमल बाबू भारतवर्ष बने थे, और जिसे वह पूरा नहीं खेल पाए थे।

महावीर—वह नाटक अब यहाँ नहीं होगा।

अमृता—क्यों नहीं होगा ? यह मेरी धरती है।

महावीर—अमृता !

डॉक्टर—महावीर बाबू, होने दीजिए न वह नाटक ! हमीं लोगों का तो है वह नाटक। हमारे समाज का प्रश्न !

महावीर—तो आप पर भी कमल का पूरा असर आ गया।

शायद आप उस बिल्लूसिंह की घटना से डर गए । आपने तो मुझे जरा भी सूचना न दी, नहीं तो मैं डाकुओं के उस पूरे गिरोह को पुलिस के हवाले कर देता ।

डॉक्टर—असम्भव ! उस गिरोह को गुरुराम-जैसे व्यक्तियों की सहानुभूति जो प्राप्त है । इन्द्रजीत ने अपना 'बाई-इलेक्शन' इसी शक्ति से ही जीता है । आपके यहाँ से निकाला हुआ बिल्लूसिंह दरबान इस तरह डाकू बनता है । इन्द्रजीत के चुनाव में सोनापुर गाँव ने उनका विरोध किया, फलतः उसी सोनापुर गाँव में प्रतिशोध के रूप में गुरुराम ने डाका डलवाया । हिंसा के बल से आपके गुरुराम घायल बिल्लूसिंह को मेरे क्लिनिक में दवा कराने लाते हैं । राजनीति और डाकू गुण्डा शक्ति का ऐसा मेल ! अरइल गाँव में हिन्दू-मुस्लिम दंगा, फिर जमुना पट्टी में ब्राह्मण-अब्राह्मण में लड़ाई, कृषि कॉलेज में हिन्दू-क्रिश्चियन में झगड़ा, आपकी इण्डस्ट्री में किसान और मजदूर में दंगा-फ़साद—यह सब क्या है ? यह तूफ़ान मामूली नहीं है । कमल सच कहता है, यदि यह परस्पर-विरोध, यह आपसी फूट, यह आन्तरिक हिंसा समाप्त नहीं होती तो इस राष्ट्र के वे सारे ताने-बाने टूट जाएँगे, जिन्हें इस महादेश में आने वाली बीसियों जातियों और विचारकों ने हज़ारों वर्षों तक मिलकर बुना है ।

[अमृता हँस पड़ती है ।]

महावीर—क्यों हँसती है तू बेवक़ूफ़ की तरह ?

अमृता—आज़ादी मिल गई ! चेतना बिखर गई—जाति-जाति में ! प्रान्त-प्रान्त में ! भाषा-भाषा में ! उत्तर-दक्षिण में ! पूरब-पश्चिम में ! ग़रीबी-अमीरी में ! चोर और डाकू में ! (गा उठती

है ।)

गंगा रे जमुनवाँ की धार नयनवाँ से नीर बही ।
फूटल भारतिया को भाग भारत माता रोय रही ।

डॉक्टर—यह शायद कमल बाबू के नाटक का हिस्सा है। खूब याद किया है इसने !

[भीतर प्रस्थान]

महावीर—यही तो हीरोइन बनी होगी नाटक में । (व्यंग्य से) इन्हीं को तो देखकर कमल साहब को अनुभूति हुई है कि इस देश का भविष्य केवल इसी जनता के हाथों में है । इस जनता से ऊपर का समाज तो धन और बल संचय में लगा है और अपने स्वार्थ की गहरी निद्रा में सो रहा है ।

[अमृता हँस पड़ती है । उसी क्षण कमल और अगस्त्य का प्रवेश]

कमल—हाँ, ऊँची श्रेणी के लोग शरीर और नैतिकता दोनों दृष्टियों से मर चुके हैं । भारत की आशा यह बैठी है । यही भारत है—एक-मात्र देवी । शेष सभी देवता झूठे हैं । मुझे इसी भारत देवी के हाथ सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं । चारों ओर इसके पाँव बिछे हैं । बाकी इस देश में जितने देवता हैं सब नींद में हैं ।

[कमल अमृता का हाथ पकड़कर उसे अपने पास खड़ा कर लेता है ।]

महावीर—पप्पू ! तुम क्यों गये इनके साथ गाँव घूमने ? चलो इधर ।

[महावीर बढ़कर अगस्त्य को अपनी ओर खींचते हैं ।]

कमल—यह बच्चा सिर्फ़ आपका ही नहीं है, यह अपने पूरे समाज का भी है ।

महावीर—चुप रहो । क्यों ले गए इस बच्चे को गन्दे गाँव

में घुमाने !

कमल—ये गन्दे गाँव इसी बच्चे के देश के हैं, तभी मैं इसे दिखाने ले गया था, ताकि यह समझे कि इसका समाज केवल वह 'दून स्कूल' ही नहीं है, बल्कि यह विराट देश है—गरीब, अशिक्षित, अन्धकारमय !

महावीर—इस बच्चे से मतलब ?

कमल—क्यों नहीं ? तुम समझते क्या हो ? यदि देश के निन्यानवे प्रतिशत बच्चे अपढ़, गँवार और गन्दे रहेंगे तो सिर्फ़ यही बच्चा अच्छा सुन्दर बना रहेगा ? नहीं, कभी नहीं ! जो सब होंगे, वही यह भी होगा ।

अगस्त्य—पापाजी, बहुत गन्दे हैं गाँवों के लोग। चारों ओर बदबू है। बहुत खराब घर हैं। सब बच्चे नंगे घूमते हैं। उन्हें क्या ठंड नहीं लगती पापा ?

महावीर—चुप रहो ! चलो अन्दर ।

[अगस्त्य को खींचते हुए अन्दर ले जाने लगते हैं ।]

कमल—तुम्हारी चिन्ता सिर्फ़ अपने-आपकी है !

महावीर—और क्या मैं तुम्हारे समाज से बाहर हूँ ? मेरी यह 'कास्मैटिक्स' की इण्डस्ट्री क्या सिर्फ़ मेरे लिए है ?

कमल—क्यों नहीं ! जो अपने पुत्र को समाज से अलग की सत्ता समझता है, वह……।

महावीर—हाँ, यह पुत्र मेरा है। पर मेरी 'श्रीदास इण्डस्ट्री' समाज की सेवा के लिए है। प्रतिदिन मेरी इण्डस्ट्री में जो इतना साबुन, इतना क्रीम, पाउडर, तेल और लिपस्टिक बनता है, वह क्या सिर्फ़ मेरे इस्तेमाल के लिए है ?

कमल—भूखे और नंगे समाज को पहले भोजन और वस्त्र चाहिए। ऐसे गरीब देश में कास्मैटिक्स की इण्डस्ट्री खोलना अपने समाज का अपमान करना है, अपना निजी अर्थ बढ़ाना है ।

महावीर—तुम्हारा दिमाग़ खराब है । चलो पप्पू अन्दर !

कमल—उसका नाम मत बिगाड़ो ! उसका नाम अगस्त्य है अगस्त्य । उसका जन्म प्लास्टिक का गुड्डा बनने के लिए नहीं हुआ है, क्योंकि उसका जन्म हमारी तरह गुलाम भारतवर्ष में नहीं हुआ है । यह अगस्त्य नया भारतवर्ष है, जिसमें लोहे की मांसपेशियाँ और फौलाद की नाड़ी और धमनी है । ऐसे ही शरीर के भीतर इसका वह नया मन उगने दो, जो बिजली और वज्र की तरह हो और जिसके प्राणों में उपनिषद्, गीता, बाइबिल और कुरान की समन्वित चेतना-शक्ति हो ।

[इस कथन के पूर्ण होने के पहले महावीर और अगस्त्य भीतर चले जाते हैं । कथन के समाप्त होते ही पृष्ठभूमि में वही लोक-संगीत उभर उठता है ।]

अमृता—बाबू ! बाजा बजने लगा ।…चलो बाबू…।

[भीतर से डॉक्टर देसाई का प्रवेश]

डॉक्टर—आह ! कितना सुन्दर संगीत है–कितना अलौकिक ! इसी तरह मेरी जन्म-भूमि सूरत-गुजरात के आसपास के गाँवों में लोग गाते-बजाते हैं ।

कमल—यह एक अखंड संगीत है । पूरे देश के अन्तस्तल में यही एक संगीत व्याप्त है–महाराष्ट्र, गुजरात, दक्षिण, बंगाल पंजाब, भले ही इसके नाम अलग-अलग हों ।

डॉक्टर—मैंने तुम्हारी माँ को यह नहीं जानने दिया कि तुम आज यहाँ फिर नाटक खेलोगे।

कमल—धन्यवाद डॉक्टर साहब ! माँ का हृदय बहुत ही कमज़ोर है। अच्छा, अब हमारा नाटक जरूर देखिएगा।

[हँसते हुए अमृता का हाथ पकड़े हुए कमल का दायीं ओर प्रस्थान, डॉक्टर साहब भीतर जाने लगते हैं, तभी बायीं ओर से गुरुराम का प्रवेश]

गुरुराम—डॉक्टर साहब, नमस्ते !

डॉक्टर—नमस्ते। कहिए क्या बात है ?

गुरुराम—बिल्लूसिंह की आपने दवा की थी, उसके बाबत आपके नाम यह रुपया आया है। (दो थैलियाँ निकालकर) यह आपकी फ़ीस और दवा के लिए, और यह आपको इनाम।

डॉक्टर—ये दोनों थैलियाँ तुम्हीं ले जाओ गुरुराम ! डॉक्टर का जो धर्म था वह मैंने पूरा किया। रही इनाम की बात, सो इनाम तो तुम्हें मिलना चाहिए।

गुरुराम—क्या कहा डॉक्टर साहब ?

डॉक्टर—यही कि खूब है तुम्हारी शक्ति का चमत्कार ! उसके लिए यह इनाम तुम्हें ही मिलना चाहिए।

गुरुराम—क्यों ?

डॉक्टर—जिस शक्ति से तुम एक को 'बाई-इलेक्शन' जिताते हो, उसी शक्ति से तुम डाकुओं के मित्र भी बने रहते हो। एक गाँव में डाका, दूसरे गाँव में हिन्दू-मुस्लिम दंगा, फिर मुझे धमकाकर घायल की दवा……।

[हँस पड़ते हैं।]

गुरुराम—डॉक्टर साहब !

डॉक्टर—एक शक्ति से हिन्दू, फिर ब्राह्मण, ब्राह्मण से भी द्विवेदी, त्रिवेदी। और भी सरजूपारीण और कान्यकुब्ज। फिर उसी शक्ति से कभी राष्ट्रीय, कभी जातीय, कभी प्रान्तीय, कभी साम्प्रदायिक और कभी जनवाद, मतलब यह कि सभी राजनीतिक पार्टियाँ आपके भीतर।

गुरुराम—डॉक्टर साहब, यह आप नहीं, वही कमल बोल रहा है।

डॉक्टर—नहीं, मैं बोल रहा हूँ। तुमने मेरी आँखें खोल दीं। मैं यह धन नहीं लूंगा। तुम मेरी नैतिकता खरीदना चाहते हो क्या ?

गुरुराम—ये सब कैसी बातें कर रहे हैं आप ?

डॉक्टर—मेरी नैतिकता किसी भी मजबूरी से नाजायज़ फ़ायदा उठाना नहीं है। ले जाओ यह धन और अपनी शक्ति !

[भीतर प्रस्थान। पृष्ठभूमि का संगीत फिर उभर आता है। गुरुराम कुछ देर चुप खड़ा रहकर महावीर के दरवाजे पर जाता है। फिर तेजी से बाहर प्रस्थान। मंच का सारा प्रकाश सहसा बुझ जाता है। पृष्ठभूमि का संगीत मंच पर छा गया है। धीरे-धीरे मंच पर प्रकाश लौटता है। फिर पीछे मंच पर वही बेवकूफ़ ताल देता हुआ गा रहा है—

पक बम बम बम !
पक बम बम बम !
कहाँ तुम कहाँ हम
पक बम बम बम !

[मुसाफ़िर सामने खड़ा है।]

मुसाफ़िर—चुप रह। पक बम बम बम। पक बम बम

बम । इतने वर्षों से तेरा एक हो गाना सुनते-सुनते मेरे कान पक गए। तेरे इस गाने का अर्थ क्या है ?

बेवक़ूफ़—अजी अर्थ ही जानता तो यहाँ बारह साल से हाथ-पर-हाथ रखे बैठा रहता !

मुसाफ़िर—फिर क्या गाता है ?

बेवक़ूफ़—पक बम बम बम
पक बम बम बम !

मुसाफ़िर—चुप रह, निरर्थक कहीं का !

बेवक़ूफ़—अच्छा तो तू अपना अर्थ जानता है न ! क्या है तेरा अर्थ ? बता……।

मुसाफ़िर—मनुष्य ।

बेवक़ूफ़—मनुष्य का अर्थ ?

मुसाफ़िर—एक मनुष्य बंगाल का, दूसरा आसाम का। एक मनुष्य उत्तर का तो एक दक्षिण का। एक सिन्ध का तो एक पंजाब का ।

बेवक़ूफ़—यह तो गुलाम का अर्थ है, मुझे मनुष्य का अर्थ बता। वह अर्थ जो सृष्टि करता है, जो प्रेम करता है, और जिसके सहारे मनुष्य चन्द्रलोक में जाता है ।

मुसाफ़िर—मनुष्य का यह अर्थ !

बेवक़ूफ़—और क्या ! मनुष्य का अर्थ न लार्ड क्लाइव है, न मिस्टर जिन्ना, न बंगाली, न गुजराती । मनुष्य का शायद अर्थ है ईसा मसीह, कार्ल मार्क्स, गौतम बुद्ध और गांधी ।

[मुसाफ़िर बहुत जोर से हँसता है ।]

बेवक़ूफ़—क्यों हँसता है रे ?

मुसाफ़िर—सोचता हूँ, आखिर बंगाल का बंगाली भी तो मनुष्य है ।

बेवक़ूफ़—और आसाम का बंगाली ?

मुसाफ़िर—अरे ! वह भी मनुष्य है क्या ? यह तो मुझको पता नहीं था। मुझको तो सिर्फ़ यही मालूम है कि एक भाषा बोलने वालों का एक ज़िला होता है, फिर कमिश्नरी होती है, फिर उन्हीं का प्रान्त होता है—बस अपनी दुनिया खत्म !

बेवक़ूफ़—और इस दुनिया के बाहर जो दुनिया होती है ?

मुसाफ़िर—वह हमारा दुश्मन है ।

बेवक़ूफ़—और तुम्हारा देश ?

मुसाफ़िर—(क्रोध से) मैं क्यों जानूं, क्या होता है अपना देश ? मुझसे क्या मतलब जी ? मैं तो अपनी जाति जानता हूँ, अपने बाप का नाम जानता हूँ और अपने मुहल्ले का भी नाम जानता हूँ। (सहसा) अरे ! मैं तो अब अपने मुहल्ले का भी नाम-पता भूल गया ! अब क्या होगा मेरे राम !

बेवक़ूफ़—चल इधर आ। मेरे साथ गा। पक बम बम बम, पक बम बम बम ।

मुसाफ़िर—तेरे गाने का अर्थ ?

बेवक़ूफ़—फिर वही अर्थ पूछता है बेवक़ूफ़ कहीं का !

मुसाफ़िर—अबे बेवक़ूफ़ तू है कि मैं हूँ !

बेवक़ूफ़—हम दोनों हैं। इधर आ, मेरे पास बैठ। वह देख, इधर ही वह एक लड़का आ रहा है, एक बुड्ढे आदमी को अपने साथ लेकर। अरे ! यह तो वही देवता है, लबादा पहने हुए ।

[दायीं ओर से एक लड़का आता है । उसके हाथ की लाठी के सहारे

वही पुरुष आता है।]

देवता—हाँ, मैं वही देवता हूँ। इस लबादे के नीचे मेरे शरीर के वे सारे घाव ढके हुए हैं, क्योंकि मैं आज़ाद हूँ। किन्तु मैं तब से अपना ही रास्ता ढूँढ़ रहा हूँ। रास्ते में जैसे सब-के-सब रास्ते खो गए। एक ने कहा—हमारे बीच इतनी लम्बी गुलामी ने ऐसी हालत पैदा कर दी कि यहाँ कभी कोई क्रान्ति ही न हो। लोग मेरे ही भीतर आपस में ही लड़ते रहे, ताकि मैं अपने-आपमें एक होकर न कभी अपने-आपको सोच ही सकूँ, न देख ही सकूँ। उसने कहा कि दस वर्षों के लिए मुझमें डिक्टेटर नियुक्त किया जाए, जो पहले मेरा उपचार करे। देखो न, मुझमें एक घाव नहीं, एक बीमारी नहीं, जिसका आसानी से इलाज किया जाए—मुझमें तो असंख्य घाव, बेशुमार बीमारियाँ हैं।

लड़का—(सहसा) चुप रहो! आगे अब मत बोलो। अब कुछ देर खड़े रहकर सोचो।

[देवता वही करता है।]

बेवकूफ़—वाह! खूब है! जब वह कहता है, तभी वह बोलता है।

मुसाफ़िर—और तभी वह सोचता है।

लड़का—सुनो! तुम अपने दुःख की बात मत करो, सिर्फ़ बोलो। हाँ, बोलो।

देवता—तो अब बोलूँ?

लड़का—हाँ, अब बोलो।

देवता—जब मैं जंजीरों में बँधा था तो मेरे सामने सदा एक रास्ता दीख पड़ता था। चारों ओर एक प्रेरणाप्रद महान् उद्देश्य। ऐसा उद्देश्य, जिसमें सभी एक थे। मेरा वही उद्देश्य मेरी आत्मा थी। पर मेरी मुक्ति के बाद मेरे भीतर का खोखलापन मुझमें अट्टहास करके हँस पड़ा। धूल-धंगड़, सारे जहाँ से अच्छा एक बहुत बड़ा बेशकीमती महल, मकड़ी के जालों से पटे हुए उसके सूने कमरे। जगह-जगह दीमक लगे हुए। उल्लू और चमगादड़ों से भरा हुआ उसका आसमान। कमरों में बर्रे और ततैया के छत्ते। उनमें सोये हुए असंख्य भूत, प्रेत और शैतान। संगमरमर के फर्श पर साँप और बिच्छू का नाच, और कहीं बहुत दूर से उस सूने महल में सत्य-अहिंसा की आती हुई मन्त्र-गान की प्रतिध्वनियाँ।

लड़का—(सहसा) अच्छा, अब चुप हो जाओ।

बेवकूफ़—वाह! फिर वह चुप हो गया।

लड़का—अच्छा अब बोलो।

देवता—अपने उस भयंकर सूने महल के भीतर बन्द मैं रास्ता ढूँढ़ रहा था। मुझ तक कल की वे प्रतिध्वनियाँ भी नहीं आ रही थीं, जैसे मेरे भीतर के सर्पों ने मन्त्र-गान की उन प्रतिध्वनियों को पी लिया हो। मैं अकेला खड़ा था उद्देश्यहीन, पथहीन, प्रेरणाहीन। अवसर पाकर उसी क्षण मेरे भीतर के वे सारे सोये हुए भूत-प्रेत-शैतान जगकर खड़े हो गए—अलग-अलग प्रान्त के भूत, अलग-अलग जाति के भूत! मुझ पर अपने स्वार्थ का शासन करने वाले प्रेत! सब मुझे तरह-तरह से लूटने लगे—कोई मेरा राजा बनकर, कोई अफ़सर, कोई मेरा मालिक बनकर। सब-के-सब मेरा खून चूसने लगे। मैं चिल्लाने लगा—उपनिषद! बुद्ध! विवेकानन्द! तिलक…गोखले…मार्क्स…

गांधी ! मसीहा···मसीहा···बचाओ···बचाओ !

[लड़खड़ाकर वहीं सीढ़ियों पर गिर जाता है।]

लड़का—(उठाता है।) उठो···फिर उठो !

देवता—(उठता है।) पर मुझे कोई नहीं बचा सका। और मैं मूल्यहीन हो गया।

लड़का—चेतना ?

देवता—नहीं।

लड़का—जागरण ?

देवता—नहीं।

लड़का—विकास ?

देवता—नहीं।

लड़का—एकता ?

देवता—नहीं।

लड़का—कर्म ? पुनर्जागरण ?

देवता—नहीं।

लड़का—सत्य ?

देवता—नहीं।

लड़का—अहिंसा ?

देवता—नहीं।

लड़का—हिंसा ?

देवता—नहीं।

लड़का—युद्ध ?

देवता—नहीं।

लड़का—शान्ति ?

देवता—नहीं।

लड़का—फिर क्या ?

देवता—कुछ नहीं।

लड़का—कुछ नहीं क्या ?

देवता—कुछ नहीं। कुछ नहीं। नहीं···नहीं···नहीं।

[लड़का गुस्से से देवता को धक्के मारकर गिरा देता है।]

लड़का—जा भाग जा ! दूर हो जा यहाँ से ! मैं अपने ऊपर अब तेरी मूल्यहीनता की छाया नहीं पड़ने दूँगा। मृतक कहीं का !

देवता—(गिरकर उठता है।) हाँ, मेरे अमृत पुत्र ! मैं मृतक तो हूँ ही अब। मैं श्मशान हूँ और तू मेरा कापालिक है। (अट्टहास कर उठता है।) जाग···जाग मेरे कापालिक ! जाग-जाग ! मैं तुझसे यही सुनना चाह रहा था। जाग-जाग मेरे कापालिक !

[यह चिल्लाता हुआ देवता दायीं ओर भाग जाता है और उसका अट्टहास-भरा यह शब्द जैसे वायुमंडल को चीरता रहता है—'जाग···जाग मेरे कापालिक ! जाग···जाग।' उसी क्षण भीतर से आवेश में महावीर का प्रवेश।]

महावीर—बन्द करो यह नाटक ! भाग जाओ तुम लोग यहाँ से !

[दूसरी ओर से गुरुराम का प्रवेश]

गुरुराम—मारो ! मारो इन बदमाशों को !

[पीछे बैठे हुए दोनों व्यक्ति भागने लगते हैं। डॉक्टर देसाई का प्रवेश।]

डॉक्टर—क्यों ? क्यों ? आखिर क्यों आप लोग इस तरह

मारने दौड़ रहे हैं ? क्या अपराध किया है इन लोगों ने ?

महावीर—पप्पू ! तू है ! चल इधर ।

[पप्पू को खींचते हुए महावीर अपने दरवाज़े की ओर बढ़ते हैं ।]

महावीर—बोल ! क्यों तुमने इस ड्रामे में पार्ट किया ?

[सहसा दायीं ओर से कमल का प्रवेश]

कमल—मैं हूँ इसका ज़िम्मेदार । ख़बरदार, जो आपने मेरे अगस्त्य का इस तरह अपमान किया ! आपको जो कुछ कहना हो, मुझे कहिए ।

महावीर—क्या कहूँ मैं तुम-जैसे बेशर्म को ! मेरा एक ही लड़का, उसे तुमने अपने बेहूदा नाटक में कापालिक की भूमिका में ला खड़ा किया ।

डॉक्टर—महावीर बाबू ! यह तो नाटक था, नाटक !

महावीर—पर तुम अपने ऐसे अशुभ नाटक की छाया मेरे पप्पू पर मत डालो । तुम तो खुद बरबाद हुए ही, अब तुम इसका भी दिमाग़ ख़राब करना चाहते हो । मैं इसे कल ही देहरादून भेज दूंगा ।

[पप्पू को खींचते हुए महावीर का भीतर प्रस्थान ।]

गुरुराम—(व्यंग्य से) और गाओ पक बम पक बम ! बदमाश, लुच्चे कहीं के !

कमलसिंह—गुरु, ख़बरदार !

[उसी क्षण एक बैसाखी के सहारे चलते हुए पीछे से बिल्लूसिंह का प्रवेश ।]

बिल्लूसिंह—क्यों गुरु ! तुम गाने भी नहीं दोगे क्या ?

गुरुराम—(साश्चर्य) बिल्लूसिंह तुम ?

बिल्लूसिंह—हाँ, मैं बिल्लूसिंह, मैंने तुम्हारा गिरोह छोड़ दिया, अब मैं भी मुक्त हूँ । अब मैं भी इन्हीं के संग वही गाना गाऊँगा । अब मैं तेरा पुतला नहीं, अब मैं मनुष्य हूँ । डॉक्टर देसाई ने मुझे बचा लिया । कमल भैया ने मुझे फिर से मनुष्य का विश्वास दिया, मेरा दर्द जाना, मुझे स्वीकार किया ।

[यह कहते-कहते बिल्लूसिंह कमल की ओर तेज़ी से बढ़ता है, कमल उसे अपनी बाँहों में सँभाल लेता है ।]

गुरुराम—बिल्लू ! तेरा दिमाग़ तो ठीक है ?

बिल्लूसिंह—बिलकुल ठीक गुरुरामजी महाराज ! अब मैंने जाना आदमी क्या है ? तुमने मुझे पहले यहाँ मेरी दरबानी से निकलवाया, क्योंकि मैं माननीय एम० एल० ए० के केस में झूठी गवाही नहीं दे रहा था । फिर तुमने मुझे पुलिस से पिटवाया, और फिर तुमने मुझे डाकू बनने को मजबूर किया ।

गुरुराम—(सक्रोध) हूँ ! देखूंगा मैं अब तुम्हें !

[आग्नेय दृष्टि से देखते हुए बायीं ओर प्रस्थान ।]

बिल्लूसिंह—सुनो…सुनो गुरुराम ! सुनो…तुमने मेरी एक टाँग ले ली, पर मेरी आत्मा मुझमें लौट चुकी है । मैं तेरा शुक्रगुज़ार हूँ गुरुराम । तू मुझे यहाँ न लाया होता तो…।

[फफककर रो पड़ता है । कमल उसे सँभाल लेता है ।]

[परदा गिरता है ।]

तीसरा अंक

दूसरा दृश्य

[अगले ही दिन। दिन के दो बज रहे हैं। दरबान स्टूल पर चुपचाप बैठा है। माँ अपने दरवाज़े के अर्धगोलाकार मंच पर बैठी है। कमल फ़ौजी सिपाही के कपड़े पहने हुए मंच के बीचों-बीच खड़ा है।]

माँ—बोल ! तूने आज यह कपड़ा क्यों पहना ? तू मुझसे कुछ छिपा रहा है न ! सोचता है कि माँ को दुख होगा। पर बेटा, मेरा दुख यह है कि तू मुझसे अपनी बात छिपा रहा है।

कमल—ऐसी बात माँ ! तो सुन···मेरी वजह से आज अगस्त्य उसकी छुट्टियाँ खत्म होने से पहले देहरादून भेजा जा रहा है। उसकी माँ कल गया से आने वाली है। मेरी वजह से अगस्त्य अपनी माँ से भी नहीं मिल पा रहा है।

माँ—तो !

कमल—अगस्त्य के जाने से पहले आज मैं इस घर को सदा के लिए छोड़ने जा रहा हूँ, माँ !

माँ—कमल ! नहीं···नहीं···नहीं।

[दौड़कर कमल को अपने अंक में बाँध लेती है।]

कमल—मैं यही तुमसे छिपा रहा था, माँ !

माँ—(रोती हुई) पर मेरे जीते-जी यह नहीं होगा, कमल! हे भगवान् ! मेरा सब दान-पुण्य, सब पूजा-पाठ कहाँ रह गया

भगवान् !

कमल—क्यों माँ ! तुझे तो अब और जीना चाहिए, क्योंकि अब तो मैं और भी तेरे सामने रहूँगा—इस पूरे समाज में व्याप्त होकर।

माँ—अच्छा-अच्छा ! अपनी ये बातें तू अपने पास रख ! सुन, अगर यही बात है तो मैं आज पप्पू को देहरादून नहीं जाने दूँगी। अब तो तू खुश है ?

कमल—मेरी खुशी माँ ! ···मेरी खुशी इस घर में नहीं है, बल्कि इस पूरे समाज की खुशी के साथ मेरी खुशी बँधी है।

माँ—तुझे क्या हो गया है कमल ?

कमल—माँ, तुझे मैं कैसे समझाऊँ कि मुझे क्या हो गया है !

माँ—अच्छा, तू कल यहाँ से मेरे साथ गया चल। मैं वहीं तेरे साथ रहूँगी।

कमल—गया में भी तो वही दुख, अपमान है माँ !

माँ—अच्छा कलकत्ता में अपने पुराने घर चल।

कमल—माँ, क्या कलकत्ता, क्या गया, क्या इलाहाबाद—चारों ओर तो वही समाज है। कहीं कोई अन्तर नहीं है माँ ! वही दुख···।

माँ—कैसा दुख बेटा !

कमल—माँ, तुम यहाँ बैठो। मैं तुम्हें समझाता हूँ अपना दुख।

[माँ को बायीं ओर बिठा देता है।]

कमल—माँ सुनो, एक किसान है। उसका बैल है। उसका

बैल किराये की गाड़ी में चलता है। किसान को बीस रुपये रोज़ किराया मिलता है। किसान अपने बैल को सिर्फ़ दो रुपये रोज़ खिलाता है और बैल की मेहनत का शेष बचा हुआ सारा धन, सारा लाभ किसान ले लेता है। यह किसान द्वारा बैल का शोषण है। यही हालत मज़दूर और उद्योगपति के बीच में है। उद्योगपति की इण्डस्ट्री में आदमी वही बैल है। इसका फल यह है माँ कि हमारे समाज में निन्यानवे फ़ीसदी आदमी ग़रीब हैं और सिर्फ़ एक फ़ीसदी आदमी अमीर हैं। यह हमारे देश का अपमान है माँ !

माँ—इसके लिए तू क्या कर सकता है बेटा ! यह तो अपनी-अपनी किस्मत की बात है।

कमल—अरे यह किस्मत कुछ नहीं होती माँ ! आदमी की किस्मत का ज़िम्मेदार तो आदमी ही है माँ ! ईश्वर, चाँद, सूरज, नक्षत्र, इतनी ऋतुएँ, ये पहाड़, ये समुद्र, इतनी विराट प्रकृति, ये एक मनुष्य की सेवा के लिए हैं। ये सब दैवी शक्तियाँ मनुष्य के सुख-आनन्द के लिए बनी हैं, सिर्फ़ मनुष्य ही मनुष्य की समस्या है। यह मनुष्य जैसी समाज की व्यवस्था करेगा, मनुष्य को उसी में रहना पड़ता है।

माँ—तो !

कमल—माँ ! तुम्हारे गुरु महाराज एक बार गया वाली कोठी में आये थे न ! उन्होंने एक दिन कहा था, मनुष्य एक-दूसरे के साथ रहना चाहता है। यही सह-अस्तित्व उसका आनन्द है। पर मनुष्य का मनुष्य के साथ रहने का आधार क्या है ? मनुष्य में भावात्मक एकता का प्रबोध ! और इस एकता का आरम्भ ममता से होता है। माँ, मैत्रेयी से याज्ञवल्क्य ने क्या कहा था 'आत्मनस्तु कामाय सर्वप्रियं भवति'—अर्थात् अपने लिए सभी कुछ प्रिय है। जैसे तुम्हारे लिए मैं प्रिय हूँ और तुम मुझे छोड़ना नहीं चाहती; जैसे भाई साहब के लिए धन और अधिक-से-अधिक धन प्रिय है। इनकी एक इण्डस्ट्री कलकत्ता में, एक गया में, एक यहाँ इलाहाबाद में। पर सोचो माँ, इस देश के निन्यानवे प्रतिशत आदमियों से हम कितनी दूर हैं—जबकि मनुष्य का आनन्द है देश के सारे मनुष्यों के साथ रहने में।

माँ—इस एक साथ रहने का आनन्द क्या होगा ?

कमल—यह सारा देश धनी होगा, सारा देश शक्तिशाली होगा, तब हर मनुष्य को अपने देश से ममता होगी।

माँ—हमारा देश शक्तिशाली और धनी नहीं है क्या ?

कमल—काश तुमने अपने देश को देखा होता माँ ! यह ऊपर-ही-ऊपर से धनी और शक्तिशाली दीखता है। पर भीतर से यह भूखा, नंगा और बिखरा हुआ है। माँ, डेनमार्क, स्विटज़रलैंड में मुझे कहीं एक भी भिखमंगा नहीं दिखा। पश्चिम के देशों ने दो-दो महायुद्ध लड़े, पर उन पर युद्ध का उतना प्रभाव नहीं है, जितना हम पर, जहाँ कि कोई एक भी युद्ध नहीं हुआ।

माँ—इसका कारण क्या है ?

कमल—हमारा यह देश बेहद कमज़ोर है। पहले इसका कारण अंगरेज़ थे। अब तो हमीं हैं इसके कारण। हमारा संकीर्ण धर्म, हमारी अन्ध जातीयता, प्रान्तीयता और हमारा छोटा स्वार्थ, जिससे हम अपने देश को अपना नहीं अनुभव कर पाते। यही कारण है माँ, संसार के तीस पिछड़े देशों में भारत का

दरजा चौबीसवाँ है।

माँ—चौबीसवाँ दरजा क्या कम है बेटा !

कमल—(हँसता है) माँ ! इतना बड़ा देश, जिसमें इतनी अतुल सम्पत्ति, जिसमें मनुष्य की इतनी अपार शक्ति। इसकी इतनी उपजाऊ धरती जो अपनी पूरी पैदावार से ऐसे-ऐसे चार हिन्दुस्तान को भर-पेट दे सकता है और सब ऋतुओं के अनुसार सबको पूरा वस्त्र जुटा सकता है। पर माँ, हम तो अपनी ही दीवारों में बन्द हैं। हमारे समाज में अपने-अपने स्वार्थ की ऐसी ज़बरदस्त गाँठें बँधी हैं कि आनन्द का वह प्रकाश हमारे चारों ओर फैल नहीं पाता। जैसे कोई एक अपनी मुट्ठी में हमारी सारी रोशनी बाँधे बैठा है। कोई हमारी ताक़त छीने बैठा है और कोई हमारा अर्थ लिये बैठा है।

[उसी क्षण भीतर से महावीर का प्रवेश]

महावीर—ओह ! माँ तुम्हें यहाँ लेक्चर पिलाया जा रहा है। मैं कहूँ तुम कहाँ हो ! माँ उठो, पप्पू स्टेशन जा रहा है।

माँ—(उठती हुई) पप्पू आज नहीं जायेगा,

महावीर—क्यों ?

माँ—मेरी आज्ञा।

महावीर—अच्छा तुम अन्दर तो चलो।

माँ—कमल तू भी आ न !

महावीर—माँ, तुम अन्दर जाओ !

[माँ का प्रस्थान]

महावीर—हमारे परिवार ने तुमको खोया है, मैं अब पप्पू को नहीं खो सकता।

कमल—कौन पप्पू को खोना चाहता है ?

महावीर—तुम ! जैसे तुम खो गए।

कमल—आप अगस्त्य को 'दून स्कूल' में पढ़ाकर क्या बनाना चाहते हैं ? इसे फ़ौज में अफ़सर बनने देंगे ?

महावीर—नहीं।

कमल—देश का इंजीनियर बनाएँगे इसे ?

महावीर—नहीं। यह किसी की नौकरी क्यों करेगा ? यह अपना कारोबार सँभालेगा।

कमल—अर्थात् यह आप ही की तरह शोषक और विश्राम-जीवी होगा।

महावीर—कमल, तुम अपनी ज़बान सँभालो।

कमल—किससे ? तुम्हारी ताक़त से ? तुम्हारे भय से ? ये दोनों अर्थहीन हैं मेरे लिए।

[उसी क्षण भीतर से अगस्त्य आता है।]

अगस्त्य—जै हिन्द अंकल !

कमल—जै हिन्द !

महावीर—(बिगड़कर) यह क्या जै हिन्द···जै हिन्द! सीधे से नमस्ते करके भीतर जाओ।

अगस्त्य—नमस्ते चाचाजी !

कमल—फिर वही नमस्ते ! सिकन्दर आया, नमस्ते ! हूण हमें लूटने आये, उन्हें भी नमस्ते ! तैमूर आया, उसे भी नमस्ते ! अंग्रेज़ आये, उन्हें भी नमस्ते ! अब कल चीन आयेगा तो उसे भी नमस्ते !

[उसी क्षण पीछे से गुरुराम का प्रवेश]

गुरुराम—आप भी महावीर बाबू, इनका भाषण सुन रहे हैं?

[उसी समय डॉक्टर देसाई का प्रवेश]

डॉक्टर—भाई, भाषण तो तुम देना जानते हो गुरुराम! उसी एक मुख से अखंड भारत रामराज्य, दूसरे मुख से अहिंसा, और उसी मुख से धर्म खतरे में।

गुरुराम—देखिए डॉक्टर साहब, मैं आपसे बातें नहीं कर रहा हूँ।

कमल—मैं भी तुमसे बातें नहीं कर रहा था।

गुरुराम—तुम तो मुझे जानते ही हो!

कमल—हाँ, मैं जानता हूँ तुम्हें, और तुम्हारे समाज को—तुम आम्भीक, जयचन्द, तैमूरलंग, सदाशिवराव, अमीचन्द और मीर जाफ़र के भूत हो। और मैं जिससे बात कर रहा था, वह मेरा यह अगस्त्य खड़ा है, जिसमें बुद्ध, अशोक, अकबर, दाराशिकोह और गांधी की पुण्य आत्माएँ बैठी हैं। मैं मृत्यु का मुख नहीं देखता, मैं सिर्फ अपने इस प्रत्यक्ष जीवन का मुख पहचानता हूँ।

गुरुराम—ठीक है। मैंने अभी सुना, तुम यह घर छोड़कर जा रहे हो, मैंने सोचा, ज़रा तुम्हें नमस्ते कर लूँ।

कमल—लो कर ली नमस्ते! अब जाओ!

अगस्त्य—हाँ, तुम अब जाओ यहाँ से।

गुरुराम—वाह बेटा! चाचा के नाटक का तुम पर इतना असर!

[कमल हँस पड़ता है।]

दरबान—मालिक! आपको माताजी बुला रही हैं।

महावीर—चलो पप्पू!

[दोनों का प्रस्थान। डॉक्टर देसाई भीतर जाते हैं। दरबान स्टूल पर बैठ जाता है।]

गुरुराम—अरे! इन्द्रजीत बाबू इधर ही आ रहे हैं!

कमल—इन्द्रजीत क्यों कहते हो उन्हें? कहो माननीय इन्द्रजीत त्रिपाठी, एम० एल० ए०। और रही मेरे यहाँ से जाने की बात। सो मैं इस समाज से जाऊँगा कहाँ? मैं तो भाई, तुम्हीं लोगों के बीच में रहूँगा। अपने इस जन्म तक नहीं, बल्कि अपने सारे जन्म-जन्मान्तर तक।

[दायीं ओर से इन्द्रजीत का प्रवेश। अवस्था प्रायः पैंतालीस वर्ष। चूड़ीदार पाजामा और शेरवानी, सिर पर गांधी टोपी।]

गुरुराम—नमस्ते!

इन्द्रजीत—नमस्ते कमल बाबू!

कमल—नमस्ते नहीं, जै हिन्द! आइए तशरीफ़ रखिए।

इन्द्रजीत—आप भी बैठिये न!

[कमल और इन्द्रजीत वहीं सीढ़ियों पर बैठ जाते हैं।]

इन्द्रजीत—सुना है, आप यहाँ से जा रहे हैं?

[कमल हँसता है।]

कमल—मैं कहाँ जा सकता हूँ, यही तो मेरी विवशता है। अभी तो मुझे आपके इसी समाज में रहना है, जहाँ आपने एक समाज को अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए हिन्दू-मुसलमान, अमीर-गरीब, धर्म-जातियों में बाँट रखा है।

गुरुराम—सुन लीजिए इन्द्रजीत बाबू! यह कमल इसी तरह आक्रमण करता है…।

कमल—अपने पर भी ।

इन्द्रजीत—(उठते हुए) कमल बाबू, आपका खयाल ग़लत है । हमारे देश और समाज की यह अनेकता इतिहास की देन है।

कमल—इतिहास क्या है ?

इन्द्रजीत—इतिहास इतिहास है ।

कमल—नहीं, इतिहास हम और आप हैं । आपमें ईश्वर है । मैं आपसे पूछता हूँ, आपने अपने 'बाई-इलेक्शन' में हिंसा, साम्प्रदायिकता का सहारा लिया है कि नहीं ?

इन्द्रजीत—पर मेरा विश्वास अहिंसा में है ।

कमल—आपने अपनी सफलता के लिए डाकुओं और गुंडों की मदद ली है कि नहीं ?

इन्द्रजीत—यह तो मेरे मुख्य कार्यकर्ता श्रीगुरुराम की गलती है । उन्होंने क्यों डाकुओं से इसके लिए सम्बन्ध जोड़ा ? मैं तो इसके सख्त खिलाफ़ हूं ।

गुरुराम—क्या कहा आपने ?

कमल—आपने जाति-भेद और साम्प्रदायिकता के नाम…।

इन्द्रजीत—यह सब मेरे कार्यकर्ताओं का दोष है कमल बाबू ! उन दिनों अरइल गाँव में जो हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ, उसकी जिम्मेदारी मेरी नहीं है ।

गुरुराम—क्या ? तो यह सब क्या मेरा दोष है ? एम० एल० ए० की विजय मेरी हुई है क्या ? यह सब क्या कह रहे हैं आप ?

इन्द्रजीत—घबराओ नहीं । मैं सब ठीक कर लूंगा । समाज में साम्प्रदायिकता की यह आग, यह आपसी फूट और बैर !

[कमल तेजी से हँस पड़ता है ।]

कमल—यही है इतिहास ? यही है इतिहास ? हमीं है वह इतिहास ? गुरुराम, घबराओ नहीं, यह राजनीति है राजनीति। यही वह विषधर सर्प है जो हमारी चेतना पर कुंडली मारकर बैठने जा रहा है ।

इन्द्रजीत—हाँ, आज की राजनीत गन्दी हो गई है । इसके कारण इधर साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता की भावना तीव्र हुई है। समाज में इसके कारण मनमुटाव बढ़ा है और समाज में फूट हुई है । और हर पार्टी में भी कई पार्टियां बनी हैं और इससे देश की एकता नष्ट हुई है । सुनो गुरुराम……

गुरुराम—(सक्रोध) मैं अब नहीं सुनना चाहता तुम्हारी ये झूठी और रटी हुई बातें ! आखिर मैं हूँ क्या ?

कमल—चेतना !

गुरुराम—कमल बाबू, आज मुझे अनुभव हुआ है कि मैं क्या हूँ।…सुनो, अब मैं तुम्हारा कठपुतला नहीं रहूँगा। अच्छा किया मुझे इतनी चोट देकर।

[तेजी से प्रस्थान]

इन्द्रजीत—राजनीति में सच बोलने से यही नुकसान है कमल बाबू !

[भीतर से डॉक्टर देसाई का प्रवेश]

डॉक्टर—कौन नुकसान कर रहा है आपका ?

कमल—इनके गुरुराम।

डॉक्टर—अरे, वह तो लीला है साहब !

इन्द्रजीत—लीला की बात नहीं डॉक्टर साहब, मैं सोचता हूँ उन्नीस सौ बासठ के आम चुनाव में कमल बाबू को अपनी

पार्टी से टिकट दिलाकर इसी चुनाव-क्षेत्र से इन्हें पार्लियामेण्ट में भेजूँ।

कमल—क्षमा···क्षमा ! मुझे इसमें ज़रा भी विश्वास नहीं।

इन्द्रजीत—क्यों ? इस देश का निर्माण फिर कैसे आप करेंगे ? रास्ता तो यही है।

कमल—नहीं। यह रास्ता है सिर्फ़ स्वार्थ-सिद्धि का।

इन्द्रजीत—यह सोचना गलत है आपका। इसी रास्ते से तो इंगलैण्ड, अमरीका और रूस ने भी तो अपना निर्माण किया।

कलम—आप इंगलैण्ड, अमरीका, रूस की निर्माण दिशा को जानते भी हैं ? इंगलैण्ड के निर्माण के पीछे उसका इतना बड़ा उपनिवेश था, इंगलैण्ड का इतना बड़ा साम्राज्य कि उसमें सूरज नहीं डूबता था। इस तरह इंगलैण्ड के उदय में हिन्दुस्तान, मलाया, इण्डोनेशिया, आस्ट्रेलिया आदि देशों की अपार शक्ति लगी थी। अमरीका के पीछे उसकी समृद्ध पूँजी थी और रूस जो केवल पैंतालीस वर्षों में संसार की सबसे बड़ी शक्ति बना, वह अपनी पार्लियामेण्ट से नहीं, अपनी जन-क्रान्ति से।

इन्द्रजीत—और हिन्दुस्तान ?

कमल—इतिहास ने हिन्दुस्तान को कुछ नहीं दिया—न साम्राज्य, न अपनी समृद्ध पूँजी, न क्रान्ति, न समय।

इन्द्रजीत—समय क्या ?

कमल—यही कि हिन्दुस्तान को अपनी आजादी सबसे बाद में मिली। काश यह आजादी हमें अठारह सौ सत्तावन में ही मिल गई होती—फिर यह देश अपनी शक्ति दिखाता। उस समय न देश में हिन्दू-मुसलमान की समस्या थी, न हममें तब इतनी

मूल्यहीनता ही थी, न उस समय तक हमारा समाज इतना निर्धन ही था। (रुककर) इतिहास ने हमारे साथ जो इतना विलम्ब किया, उसकी क्षतिपूर्ति हमें अपने त्याग, कर्म और दर्शन से करनी होगी। हमारे बारह कीमती वर्ष बीत गए। समझ लो—इतिहास हमें सिर्फ दस वर्ष का समय और दे रहा है। इस अवधि में यदि हमने अपनी इस जन-शक्ति को नहीं जगाया और उसे एकता में बाँधकर देश के निर्माण में नहीं लगाया तो हम कहीं के न रह जाएँगे। इस चेतना से शून्य हमारी महत योजनाएँ, विधानसभा, लोकसभा, सब धरी रह जाएँगी।

इन्द्रजीत—चुप रहो, तुम इस शान्त देश में आग लगाना चाहते हो ?

कमल—हाँ, मैं यही चाहता हूँ कि आग लग जाए, जिसकी भयंकर लपट में इस देश के अन्तस् में बैठे हुए सारे भूत, प्रेत और शैतान जलकर खाक हो जाएँ। इसकी देह में युगों से लगे हुए मकड़ी के जाले, दीमक के ढूह भस्म हो जाएँ। समाज, धर्म और राजनीति के ये बिच्छू, सर्प और अजदहे जलकर राख हो जाएँ।

इन्द्रजीत—हिंसक ! अविश्वासी ! अधर्मी !

कमल—सुनो···सुनो !

[इन्द्रजीत का आवेश में दायीं ओर प्रस्थान, भीतर से डॉक्टर देसाई का प्रवेश]

डॉक्टर—कमल, तेरी वाणी की जय ! मैं तेरे पवित्र स्वर में असंख्य कमल खिलते देख रहा हूँ। मेरा रक्त कमल ! जब तू बोलता है तब मेरी आँखों के सागर में एक बहुत बड़ा कमल खिल आता है—सहस्रदल कमल ! जिसकी पंखुड़ियाँ कश्मीर

से कन्याकुमारी और द्वारिका से ब्रह्मपुत्र तक फैली रहती हैं।

[दायीं ओर से हँसती हुई अमृता का प्रवेश]

कमल—अमृता !

अमृता—बाबू! तुम्हारे लिए मैं अभी भोजन तैयार करके आ रही हूँ···चलो···। सुनो बाबू, हमारे दरवाज़े पर वह गुरुराम बैठा है। कहता है, मैं आज तुम लोगों से क्षमा माँगने आया हूँ।

डॉक्टर—वह गुरुराम ?

अमृता—हाँ, वही।

कमल—डॉक्टर साहब, आज मैं यहाँ से जा रहा हूँ। माँ की ममतावश इस घर से जुड़ा था, अब पूरा देश मेरी ममता है।

डॉक्टर—पर तुम्हारी माँ ?

कमल—उसी के तो असीम अंक में मैं जा रहा हूँ। सर्वत्र वही माँ! वही एक देवी···

[भीतर से महावीर का प्रवेश]

महावीर—कमल सुनो! मुझे यह अनुमान नहीं था कि तुम यहाँ तक फैसला कर लोगे। सुनो···तुम्हारी खुशी के लिए पप्पू को मैंने आज देहरादून जाने से रोक लिया है।

कमल—मेरे इस घर छोड़ने से आपको चिन्ता नहीं होनी चाहिए, यह घर मेरा उसी दिन से नहीं था, जिस दिन मैं विदेश से लौटा था। मेरा घर मेरा देश है—चारों ओर सब जगह !

महावीर—यह घर तुम मेरे कारण से तो नहीं छोड़ रहे हो ?

कमल—नहीं भाई साहब! कैसी बातें करते हैं आप! मेरी पीड़ा व्यक्ति से नहीं है, समाज और इतिहास से है।

महावीर—तुम जानते हो कमल, दीनबंधुदास परिवार ने किसी ग़लत ढंग से अपना यह धन नहीं कमाया है, बल्कि यह सब अपने पुरुषार्थ का फल है।

कमल—मुझे आपसे, या आप-जैसों से, या गुरुराम और इन्द्रजीत-जैसों से कोई दुःख-दर्द नहीं; मेरा दुःख-दर्द है इतिहास के उस अध्याय से, उस मोड़ से, जहाँ उसने मनुष्य को मनुष्य से बाँट दिया, कोई धनी से और अधिक धनी होता गया, कोई ग़रीब से अधिक ग़रीब हो गया। मेरी सारी चिन्ता इस देश की सोयी हुई चेतना से है—मैं उसी को जगाना चाहता हूँ। नहीं तो इस अनन्य-विराट् देवता को ये भूत, प्रेत, शैतान, धर्म, जाति, भाषा, चुनाव, स्वार्थ, प्रान्त और अर्थ के अन्धकार में नष्ट कर डालेंगे। (सहसा) अच्छा, जै हिन्द !

महावीर—कमल !

डॉक्टर—कमल, रुको !

महावीर—सोचा है, तुम्हारे इस तरह जाने के बाद माँ का क्या होगा !

डॉक्टर—यह खबर सुनते ही तुम्हारी माँ बेहोश हो जाएगी। उनका दिल कितना कमज़ोर है !

कमल—(हाथ जोड़े हुए) आप लोग तो हैं ही! डॉक्टर साहब, मेरी माँ को आप होश में ला दीजिएगा। कहिएगा कि कमल फिर आ जाएगा।

[सहसा उसी क्षण बायीं ओर से बिल्लूसिंह का प्रवेश और दायीं ओर से कनू और सारंग का]

महावीर—(सहसा उत्तेजित होकर) आ गए तुम सब लोग ? गुण्डे···चोर··· बेईमान! मेरे घर में आग लगा दी···!

कमल—भाई साहब, सोचिए हमारे समाज में यह गुण्डा, डाकू आया कहाँ से ? यह धन की रक्षा के नाम पर हमारे समाज में दाखिल हुआ—पहरुआ, दरबान और तकाज़ेदार के रूप में !

बिल्लूसिंह—मालिक, मैं आपका वही तो दरबान हूँ, जिसे आपने···।

[कंण्ठ भर आता है।]

सारंग—मैं भी तो मालिक आपकी ही इण्डस्ट्री का एक मजदूर था। मैं मुसलमान हूँ, इसलिए गुरुराम की साजिश से आपने मुझे अपनी इण्डस्ट्री से निकाल दिया।

महावीर—चुप रहो !

कमल—सुनो···जब उत्पादकों के समाज में विश्रामजीवी पूंजीपति नहीं होगा, तब वहाँ लाठी और बन्दूक पर जीने वाला वह गुण्डा और डाकू भी नहीं होगा।

महावीर—और तुम्हारा यह किसान कनू जो अपने खेत को कानून से भी बड़ा समझता है ? मुझसे अपनी इस हारी और बेदखल की हुई ज़मीन का दाम नहीं लेता।

कमल—यह गरीबी की भावुकता है। असहाय का प्रतिशोध है यह ! (रुककर) हम सबको एक बार जगने-जागने दो, फिर देखना जीवन कुछ और ही है। जीवन न प्रान्त है, न धन, न जाति न वर्ण है। जीवन का मुख तो सूर्य की तरह है जिसमें सब एक हैं, सब समान हैं।

[भीतर से माँ और अगस्त्य का प्रवेश]

माँ—कमल, कमल ! अगस्त्य आज देहरादून नहीं जाएगा।

कमल—माँ !···पर मुझे तो जाना है माँ !

माँ—कमल।

[कमल बढ़कर माँ का चरण-स्पर्श करना चाहता है, पर माँ उसे अंक में बाँध लेती है।]

कमल—माँ···माँ··(घबराकर) डॉक्टर साहब, यह माँ तो बेहोश हो गई ! सँभालिए डॉक्टर साहब !

[महावीर, डॉक्टर और दरबान सभी माँ को सँभालकर डॉक्टर के क्लिनिक में ले जाते हैं। कुछ क्षणों बाद अकेला दरबान लौटता है और बढ़कर अपने स्टूल पर बैठ जाता है।]

कमल—(दायीं ओर के अर्धगोलाकार मंच को सिर से स्पर्श करता हुआ) माँ प्रणाम !

अगस्त्य—चाचाजी ! मैं भी तुम्हारे संग चलूंगा।

कमल—(स्नेह से) तुम्हारा नाम ?

अगस्त्य—अगस्त्य।

कमल—तुम्हारा काम ? ··नहीं मालूम ··सुनो···मानवता का प्रकाश, उसकी समानता, एकता और मनुष्य का गौरव इतिहास के इस भयानक समुद्र ने अपने भीतर घूंट लिया है। इसके बाहर केवल स्वार्थ, द्रोह, विश्वासघात, विघटन और मूल्यहीनता का क्षुब्ध हाहाकार सुनाई दे रहा है। मेरे नये अगस्त्य ! तुम्हें इस विषाक्त समुद्र को सोखना है ताकि हमें मनुष्य का वह विलुप्त प्रकाश, उसकी समानता, एकता और उसका गौरव वापस मिल सके। नहीं तो अलग-अलग यह गरीब बेचारा मनुष्य टिटहरी की तरह इस विषैले समुद्र को कहाँ कैसे अपनी चोंच के सहारे सुखा पाएगा !···जय अगस्त्य !

अगस्त्य—जय कमल !

कमल—तुम्हारा गान ?

अगस्त्य—जागे नवभारतेर जनता
एक जाति एक प्रान
एकता !

कमल—जय अगस्त्य !

[अगस्त्य बढ़कर कमल के चरण-स्पर्श करना चाहता है।
कमल उसे अंक में भर लेता है।]

कमल—मेरे जयी !

[कमल जाने लगता है]

दरबान—(सहसा) भैयाजी, मैं चुपचाप सब देखता रहा और आज से मैं यहाँ बैठा अब तुम्हारी राह देखूंगा।

कमल—दरबान ! मैं देख रहा हूँ पीछे फुलवारी के उस गमले में जो बरगद का वह बौना पेड़ लगा है न, उसमें बड़े-बड़े वृक्ष झूम रहे हैं और तुम्हारा यह काठ का जड़ स्टूल एक दिन चेतन हो जाएगा—मैं अभी से यह देख रहा हूँ दरबान !

[पृष्ठभूमि में वही लोकसंगीत उठता है। कमल आगे-आगे जाने लगता है। उसके साथ अमृता है। पीछे सारंग, कनू और बिल्लूसिंह जा रहे हैं। अगस्त्य और दरबान खड़े उन्हें देख रहे हैं।]

अगस्त्य—जय कमल !

पृष्ठभूमि—जय अगस्त्य !

[भीतर से डॉक्टर और महावीर दौड़े आते हैं और पीछे बढ़कर
उसी दिशा में देखने लगते हैं।]

[पटाक्षेप]